

आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि

बालकृष्ण शर्मा

‘नवीन’

भवानी प्रसाद मिश्र



राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली

पहला संस्करण म०, १९६७

मूल्य
प्रकाशक
मुद्रक

तीन रुपये
राजपाल एण्ड स० ज० कश्मारी ग० दिल्ली-६
हरि मुद्रण प्रतिष्ठान द्वारा भारत मुद्रणालय दिल्ली-२२



जी
व
नी

पहना सस्करण मई १९६७

मूल्य
प्रकाशक

तीन रुपये
राजपाल लण्ड सज कम्पारी गट दिल्ली-६
हरि मुग्ण प्रतिष्ठान, द्वारा भारत मुद्रणाशाय दिल्ली-३२



जी
व
नी

मन को व्याकुल किया होगा। यहाँ उज्जैन में तत्कालीन राजनीतिक और साहित्यिक हलचलों का सम्पर्ग उन्हें हुआ। घालिये पन्नाई लिम्बार्ड को 'नवीन' जी न कभी कुछ गिना रहा। पटन में वह विनाप याग्य नहीं था लेकिन साहित्य समाज और राजनीति के खूब आममान के नीचे आकर खड़े हो पान का कोई श्रवण उद्दिष्टि कभी हाथ से नहीं जान दिया।

एक दिन उन्होंने समाचारपत्र में लोकमाय तिलक का वह भाषण पढ़ा जिसमें भारत की जनता का अस्मिन् १९१६ का लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होने का निमन्त्रण किया गया था। तिलक बालकृष्ण के हृदय-संग्राहक थे। उन्होंने लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होने का तय कर लिया। समस्या थी पन्ना की किन्तु नम-नम उन्होंने पन्ना छोड़ा और नगपुर के रास्ते पर कम्बल हाथ में लाठी लेकर लखनऊ चल दिए। लखनऊ का नाम भर मुना था न किसी-से जान पहचान थी न एक यात्रा पट्ट ही थी कि अनजाना जगह का कुछ न गिनत गाड़ी में ही एक महाराष्ट्रीय सज्जन से उनका परिचय हो गया और उन्होंने साथ में एक हाट में ठहर गए। सुबह वहीं हाट में उनका माखनलाल चतुर्वेदी से भी परिचय हुआ और यह परिचय गीघ्र ही अनिष्टता में परिणत हो गया। श्री मंगललाल चतुर्वेदी के ही माध्यम में उनका श्री गणेश शंकर विशारथ तथा मयिलीगरण जी गुप्त से भी परिचय हुआ। निहायत दुबल पन्ना चला लगाए तजस्वी नवयुवक का देखकर बालकृष्ण का बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि, उनका बाल्यनिक चित्र रं गणेशजी का यह वास्तविक चित्र बिलकुल भी मल नहीं रखता था।

'नवीन' जी कांग्रेस देवना आए थे किन्तु बला प्रयत्न करन पर भी उन्हें पहलानि कांग्रेस देवना के लिए टिकट प्राप्त न हो सका। ता भी न उन्होंने कुछ माना और न निराग हुए। बाहर द्वार पर खड़े खड़े अधिवक्ता की जितनी भर्त्सिका ल मकत ये लेन रहे। जब पहले दिन का अधिवक्ता समाप्त हुआ और लोकमाय तिलक बाहर निकले नवीन जी भीड़ चीरने हुए, आन्ना में आगू भरे लोकमाय के निकट पहुँच गए। उनके चरण स्पर्श किए और गममा कि लखनऊ आना सफल हो गया। विशारथी को घटना का पता चला तो उन्होंने नवीन के लिए एक टिकट का प्रबंध कर दिया। 'नवीन' जी न गणेशजी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा का अनुभव किया और थोड़े ही समय में उन्होंने लखनऊ

पहला संस्करण मई १९६७

मूल्य
प्रकाशक
मुद्रक

तीन रुपये
राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली-५
हरि मुद्रण प्रतिष्ठान द्वारा भारत मुद्रणालय, दिल्ली-३२



जी
व
नी

परिचय

व्यक्तित्व

वानवृष्ण गमा नवान का नाम मन म प्राप्त हा आला व मामन एक तरागे रूप आत्मा का चित्र गिच जाना है। छ फुट लम्बा व्यायाम म सधाया-नपाया बनिष्ठ गरीर विगाल बक्षस्यन वपस्वथ दीघनाहृ वुछ नाली लिए हृण चिट्टा रग उन्नत भाव नुनीली नामिना बटा और पनी आर्मे, खिचे हृण गैठ और तजदुक्त प्र विगाला मुगमण्डन । नवीन जी का कट्ट बार ता स्वत हा बाना था । पौग्य मोत्य व व माना आदग थ । उनका स्वकर लगता था जम किमी सही कल्पनागीन मूर्तिकार न अपनी मार्गे कल्पना को समट कर एक मूर्ति गटना तय किया था । साहित्य जगन म ही नहीं कहा भी उनक समान प्रियगान व्यक्ति मिलना मरन नहीं था ।

उम मित्रमिले म म् १९२३ की एक घटना यात्र आता है । प्रयाग म त्रिशा मला मनाया जा र्ग था । उमम कवि ररवार का भी आयाजन किया गया । पन निगाला तथा नवीन जी की भूमिकाया व त्रिण व्यक्तिया का आत्यक्ता पडा । पत और निगाना व लिए ता चाटिन व्यक्ति मिल गए तकिन नवीन व त्रिण काई उपयुक्त पात्र नहीं मिना । काट्ट ररीर म ता काई स्वर म अयाग्य गगना । सयाजक कहने य नवीन बनें ? नवीन वनन व लिए चाटिण वृपभस्वत्र कहरि ध्वनि बलनिधि बाहु विगान । अन्त म निगान हाकर नवीन जी का भूमिका छाड दनी पटी ।

साफ धुना गहर का बुना पाजामा पहन मिर पर निरछी टापी लिए म् म पान दवाण आहिस्ता आहिस्ता गम्भीरता म मिगरट पीन कभी किमा समान म पत्र जान ता बने मे बन् आत्मी छोटा लगन गगता था । उनक

परिचय

व्यक्तित्व

वानवृष्ण गर्मा नवान का नाम मन म आत ही आखी के सामन एक तराग हूए आत्मी का चित्र खिच जाता है। छ फुट लम्बा व्यायाम मे सघाया तपाया बनिष्ठ गरार विगाल बस्थन, बपस्वघ गीघनाहु कुछ लाली त्रिए हूए चिट्टा रग उन्नत माल नुनीली गामिका बडी और पनी आखें, खिचे हूए हाठ और तजदुक्त प्रभावगाली मुग्मण्डन। नवीन'जा को कइ वार ता दग्यत हा बोना था। पीग्य मोन्य क ब माना आत्मा थ। उनका दखकर लगता था जम किमी मही कल्पनागील मूनिवार न अपनी सारी कल्पना का समट-कर एक मूनि गडना तथ किया था। साहित्य जगत म ही नही कही भी उनक समान प्रियगन व्यक्ति मिलना सरत नही था।

स मिनमिल म मन् १८५३ का एक घटना याद आती है। प्रयाग म द्विवश मला मनाया जा रहा था। उसम कवि दरवार का भी आयोजन किया गया। पत निराला तथा नवीन जी की भूमिकाका क लिए यक्तिया की आवश्यकता प। पत और निराला क त्रिए ता वाठित व्यक्ति मिल ग लकिन नवीन क त्रिए काइ उपयुक्त पात्र नही मिला। काई गरीर से ता काइ स्वर म अयाग्य गगता। सयाजक कन्ते, य नवीन बनेंग ? 'नवीन बनन क त्रिए चाहिए वृषभस्त्र बहरि ध्वनि बलनिधि ग्राहु विगाल। अन्त म निराला हाकर नवीन जी का भूमिका छाड देनी पटा।

साफ घुना सहर का कुता पाजामा पन् सिर पर तिरछी टोपा लिए मु म पान दवाग आहिस्ता आहिस्ता गम्भीरता म मिगरेट पीन कभी किमा समाज म पन्व जात ना बडे म बडा पात्मी छाटा लगन लगता था। उनर

आसपास हूँ और उल्लास की तो जस बरसात हो हार्ना रहनी थी । धामी यता ऐसी कि पहली बार मिलकर ही मुझे पता था कि नवीन जी न मुझे नय आदमी का तरह ग्रहण नहीं किया है । उनमें निरपेक्ष ध्वजार-कुशलता और बलावटी तिनकता नहीं थी । सबमें स्वाभाविक आत्मायभाव से मिलत थे । उनमें तिए कोई भी अविश्वसनीय नहीं था । कहते हैं कभी गुस्ता में आ जाते तो सारा गरीब काय तगता चहरे तमतमा जाना आते जब उठता किन्तु उनका यह रौद्र गकरी रूप विरत था । मुझे उस दखन का भाग्य रही मिला ।

जीवन उनका सपनों की एक बहानी है । गाँव जिस दिन से घाए अपने चल जान तब से भीतर जाहर जूमन ही रहे । ८ दिसम्बर सन १८९७ के समय भारत के राजापुर परगना के मियाना गाँव में एक अत्यन्त तरिद्र भगवन्-भक्त बण्णव ब्राह्मण जमुनादास के घर पैदा हुए । नवीन जी ने लिखा है 'मेरा माता कहा करती हैं कि गाँव के बाधन के बाड़े में अपने राम नाम लिखा था । मर पिना बहुत गरीब थे । अपने जन्म के समय सिमा धाली बनने के और कुछ मूमयाम नहीं हुई ।

नवीन जी का बचपन अधिक अभाव एवं विपथता में बीता । और ११ वष की अवस्था तक पढ़ाई का कोई समुचित प्रबंध न हो सका । ११ वष की अवस्था में उनकी गि ११ धारम्भ हुई । पिता उन तिनो नाथद्वारा में थे । मा गाजापुर में अनाज पीसकर कुछ पैसे कमा लेती थी । परा में जूत पहनना एक धारामतलवी समझी थी इसलिए बन्दा नग परो रहता था । पबन्दा सने कपड़े पहनना और साल में सिफ दो धोतियों पर गुजर करना एक मामूली और बिलकुल स्वाभाविक बात थी । तिनोके दूसरे से मायकर पढ़नी पड़ती थी । उहाने गाजापुर से मिडिल स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की ।

और चूँकि आग पढ़ना चाहते थे गाजापुर के पास, उज्जैन चल गए और वहा के माधव विद्यालय से हाई स्कूल की परीक्षा पास की । उज्जैन में नवीन जी को कुछ योग्य उत्साही मित्र तथा दिना मुभान और उत्साह प्रदान करने वाले अध्यापक मिल गए और नवीन जा सपने दखन लगे । बचपन में बण्णव मा उहे अष्टछाप के पद गा गाने मुलाती थी अवचेतन मन पर उनका असर पड़ता रहा होगा राजापुर में उहाने आयसमाज सभा का समूचा पुस्तकालय चाट डाला था अवश्य ही एक नय सामाजिक आदश ने उनमें किशोर

मन का व्याकुल किया होगा। यहाँ उज्जैन में तत्कालीन राजनीतिक और साहित्यिक हलचल का सस्पेंस उड़ रहा था। शालेय पढाई तिरछाई को 'नवीन' जी ने कभी कुछ गिना नहीं। पढ़ने में वह विशेष योग्य नहीं थे लेकिन साहित्य समाज और राजनीति के सुलभ आसमान के नीचे आकर खड़े हो पाने का कोई अवसर उन्होंने कभी हाथ में नहीं जान लिया।

एक दिन उन्होंने समाचारपत्र में लाकमाय तिलक का वह भाषण पढ़ा जिसमें भारत की जनता को दिसम्बर १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया गया था। तिलक बालकृष्ण के हृदय में घात थे। उन्होंने लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित होना तय कर लिया। समस्या थी पसा की किंतु जय-सैम उन्होंने पस जुगु लिए और नगे पर कंधे पर कम्बल, हाथ में लाठी लेकर लखनऊ चल दिए। लखनऊ का नाम भर सुना था, न किसी-से जान पहचान थी न ऐसे यात्रा पट्टे ही थे कि अनजानी जगह को कुछ न गिना, गाड़ी में ही एक महाराष्ट्रीय सज्जन से उनका परिचय हो गया और उन्हीं साथ ही एक होटल में ठहर गए। सुबह वही होटल में उनका माखनलाल चतुर्वेदी से भी परिचय हुआ और यह परिचय शीघ्र ही घनिष्टता में परिणत हो गया। श्री माखनलाल चतुर्वेदी के ही माध्यम से उनका श्री गणेश दाकर विद्यार्थी तथा मजिलीगरण जी गुप्त से भी परिचय हुआ। निहायत दुबल पतले, चन्मा लगाए तेजस्वी तबयुवक को देखकर बालकृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि उनके काल्पनिक चित्र से गणेशजी का यह वास्तविक चित्र बिल्कुल भी मेल नहीं रगता था।

'नवीन' जी कांग्रेस देखने आए थे किंतु बड़ा प्रयत्न करने पर भी उन्हें पहलू टिकट प्राप्त नहीं हो सका। ता भी न उन्होंने कुछ माना और न निराग हुए। बाहर द्वार पर खड़े अधिवक्ता की जितनी भलकिया ल सक्त थे लगे रहे। जब पहले दिन का अधिवक्ता समाप्त हुआ और लोभमान्य तिलक याहरे निकले नवीन जी भीड़ चीरते हुए, आत्मा में आसू भर लोभमान्य के निकट पहुंच गए। उनके चरण स्पर्श किए और समझा कि लखनऊ आना सफल हो गया। विद्यार्थी की घटना का पता चला तो उन्होंने नवीन के लिए एक टिकट का प्रबंध कर दिया। नवीन जी ने गणेशजी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता का अनुभव किया और घोड़े ही सम्पर्क में उन्होंने दुबक वा-

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

वृष्ण का इतना प्रभावित किया कि वह सत्ता के लिए उनका भक्त हो गया।
 १२ नवीन जी लगनऊ से चलने को हुए, विद्यार्थीजी को यह जानकर बड़ा
 आश्चर्य एक दुःख हुआ कि बालकृष्ण बढाने की १२ मर्दों में सिर्फ एक बम्बल
 पर अपना मुँहारा करता रहा।

नवीन जी की लगनऊ यात्रा अनक दृष्टिया में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। उनका
 नास्तिक जीवन का आरम्भ ही यही में समझना चाहिए। गणेश और विद्यार्थी
 का सम्पर्क होना नवीन जी के जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। यहाँ
 वह धुरी है बाद में जिसपर नवीन का व्यक्तिगत साहित्यिक और राजनीतिक
 जीवन घूमता रहा।

लगनऊ में उज्जैन वापस आकर बालकृष्ण ने मट्टिकुलानि परीक्षा उत्तीर्ण
 की। भाग पाने की इच्छा तो बहुत थी किन्तु कोई उपाय दिखाई नहीं देता
 था। सोचने सोचते बालकृष्ण का लगा बघो ने बानपुर विद्यार्थीजी के पास
 चला जाऊँ। ३ जमा बहग बसा बरगा। उहाँन बानपुर जान की अपनी यह
 इच्छा जब मा पर प्रकट की तो मा ने कहा कि हम लोग एग कहा है कि तुम्हें
 बानपुर भजार पना सकें। तूने काफी पन लिया है यही भगवान का भारी
 भर। प्रभु जा कुछ नया सूना दग उसमें सत्ताप मानकर हम उगका ही भजन
 करेग बग। बालकृष्ण का भविष्यद्रष्टा स्वप्नगीत मन मा की इस विवेचना
 में निराग नहीं हुआ। उहाँन कहा जीजा भगवान की भारी तू भर और
 मुझे भारतमाता की भारी भरने के लिए मुक्त करे। नवीन जी ने अपनी
 जीवना में लिखा है भर जावन में लगनऊ वाग्रम की मरी यात्रा और परीक्षा
 के बाद बानपुर की वह यात्रा बहुत महत्त्वपूर्ण साबित हुई। उहाँन मरे जीवन
 का प्रवाह बिनकुन हा चान दिया।

गणेशजी ने बालकृष्ण को स्थानीय ना स्ट चक्क बालज में प्रवेश दिला
 दिया और दोस रुपय मा मिन की एर टगुगन का प्रय के भी कर दिया। नवीन
 जी पढ़ते पढ़ते और गणेशजी के प्रसिद्ध पत्र प्रताप में काम भी करते। इस
 प्रकार गणेशजी के संरक्षण में नवीन जी का राजनीतिक एवं साहित्यिक जीवन
 आरम्भ हो गया।

एक काल में नवीन जी ने राजनीति, इतिहास, दार्शनिक धर्म तथा संस्कृत
 अंग्रेजी और हिन्दी साहित्य का सामा अध्ययन किया। चाहे ही समय में बानपुर

के साहित्यिक और राजनीतिक क्षेत्र में नवीन जी ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। कानपुर के मजदूर आंदोलन में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया। एक कवि के रूप में भाव जल्दी ही व्याप्त प्रसिद्धि हासिल। उन दिनों उनकी 'कवि कुछ एसी तान सुनाया' कविता जनता का कण्ठहार बनने लगी थी। विप्लव लिखान का सिलसिला तभी से चल रहा था मगर गांधी वाचा की आधी चल पड़ी और नयुक्त प्रदत्त सत्याग्रहियों का जो पहला जत्या तय हुआ उसमें बालकृष्ण गर्मा नवान का नाम मौजूद था। घन्टों में एक दिन साप्ताहिक प्रताप में प्रकाशित हुआ 'श्रास्ट' के बालकृष्णानपुर के निम्नलिखित विद्यार्थियों ने कांग्रेस के प्रस्तावानुसार बालकृष्ण लिखा है—(१) शिवप्रसाद द्विवेदी चतुर्थ वर्ष (२) हनुमानप्रसाद गुप्त चतुर्थ वर्ष (३) उमाशंकर दीक्षित, तृतीय वर्ष (४) श्री बालकृष्ण गर्मा, चतुर्थ वर्ष।

सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने पर उन्हें सन् १९२१ में पहली बार जेल के सजा दी गई। उन्हें बन्धन बन्धन कर कई जेलों में भेजा गया इस जेल यात्रा के परिणामस्वरूप नवीन जी ५० जवाहरनाथ नहर आचार्य कृपलानी राजधर्म पुरुषोत्तम दाम टण्डन आदि देश के शीर्षक नताग्रियों के सम्पर्क में आए।

'नवीन जी के जैन ज्ञान की खबर सुनकर उनकी पिताजी दोड़े-पौड़े आए और बालकृष्ण से क्षमा माग कर छूटने की प्रार्थना की। लेकिन बालकृष्ण ने अपना जीवन देश का समर्पित कर चुका था। पिता निराश होकर लौट आए, मगर इस बात पर उन्होंने गांधी भरोसे में सत्ताप व्यक्त किया कि बालकृष्ण जेल में बंधनवधम का निर्वाह कर रहा है। नवीन जी ने पिता से जब मुलाकात की तो पिता ने कहा कि बगैरे माय पर तिनके गले में मारा और पावा में गढ़ाऊ पहन रहा है।

'नवीन जी का छठे बार जेल यात्रा करनी पड़ी। नगभंग नौ वर्षों का समय उन्होंने जैनगाना में बिताया। जैनगाना राजनतिक कदी के विन्वविद्यालय ही समर्पण। बालकृष्ण गर्मा नवीन के लिए तो बगैरे सत्तनऊ जेल एमा ही सिद्ध हुआ। यहाँ परिचित जवाहरनाथ नहर में उन्होंने अंग्रेजी और भूमिति पढ़ी। और नवीन जी ने जवाहरनाथ का बधायद सिखाई। उम्मिला मन्का यवा प्रथम रंग उनकी प्रथम जेलयात्रा के समय ही लिखा गया था और सन् १९२० के द्वाइ वर्ष के कारावास काल में इसकी समाप्ति हुई थी। उनकी रचनाओं पर भी हुई विधिया

बालकृष्ण गर्मा नवीन

एक स्थाना से जान हाता है कि उनकी अधिकांश कविताएँ जलमयानी की पहार पीसारी में उठकर ही लिखी गई हैं। बाहर आकर तो उन्हें राजनीतिक हलचल और 'प्रताप' के सम्पादन से ही अधिकांश नहीं मिन पाता था और यह ता तय ही है कि और चाहे जो काम नाग टोड में ही जाए कविता भाग-टोड की चीज नहीं है। उन तो आलस्य में भी कुछ अधिक गारवाही कर करने की सुविधा चाहिए।

विद्यार्थीजी की मृत्यु के बाद उनके स्मारक दरान की दृष्टि से एक निधि समग्रह समिति भी बनी और उसका लगभग सारी जिम्मेदारी नवीन जी पर डाली गई। हरिजन सबके में स्वयं गांधीजी ने नागों का निधि में रक्म भजन का आह्वान करते हुए आश्चर्य भाव से कहा जिस सम्पत्ता का संरक्षक वास्तव में उमक वारे में शीघ्र विचार हो वशा।

एक अरसे तक नवीन जी का वायदा प्रकाशपुर ही रहा। उनका पहला विवाह १८ वर्ष की अवस्था में ही गया था। लेकिन गौन में पहले इनकी पत्नी राम मसार से बिगा हुआ गई। सुनते हैं कानपुर में ही किसी कन्या से उनका प्रेम हुआ था दाता ने पारस्परिक विवाह करने की गणना ली थी। अतः में कन्या के पिता ने अनेक बालक दिवाकर किसी अनाथ व्यक्ति में उसका सम्प्रेष करने के लिए उसे राजी कर लिया। राम घटना से उह जा आघात पहुँचा और उसका परिणाम स्वरूप उनकी कविता में जो एक विचित्र वटना घन गई वह उह ही असीं या में भी आजाए रहना सिता गई। मुझ ता उनका अनिश्चयत्व भाव वसी वदना का उदासीनरण लगता है।

गांधीजी के प्रति उनमें अपार श्रद्धा थी। वह हैयालात मिथ प्रभाकर के ग दो में गांधीजी के व मजनु घ'। यह सत्य ही है। गांधीजी के सबन माथ पर व अपना सब कुछ प्रतिदान करने को तयार हुआ जान थ। जब साम्प्रदायिक निषय के विरुद्ध गांधीजी ने आमरण अनशन किया तब नवीन जी बड़ चिंतित हुए थ लेकिन उनके लिए बारी चिंता का काइ अथ नहीं था जितने दिनो तक गांधी जी का अनशन चला उहान भी उतने दिना तक जन के अतिरिक्त कुछ घटण नहीं किया।

गांधीजी में उनकी अगाध श्रद्धा थी कि तु व उनकी आलाचना करने में भी नहीं चूकत थे। हिन्दी के प्रश्न पर व गांधीजी से सहमत नहीं थे। वास्तव में अध्यापीय चनाव के लिए गांधीजी ने सुभाष के विरुद्ध डा० पट्टाभि सीताराम्या

को लडा किया था, लेकिन नवीन जी ने अपना वोट पट्टाभि को न देकर सुभाष को दिया था। यह घटना उनकी स्वातंत्र्यप्रिय पवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। बम्बई कांग्रेस में भारत छोड़ो आन्दोलन के सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित हुआ 'नवीन जी उसमें कुछ मसौदा प्रस्तुत करना चाहते थे लेकिन ऐसा करने की उन्हें अनुमति नहीं मिली, बस अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें बीस मिनट का समय अवश्य मिल गया। उस दोस मिनट के समय में उन्होंने कांग्रेसी नेताओं की खूब आलोचना की। वे पूर्णतः गांधीवादी नीति के पक्ष में नहीं थे वे गांधी और कांग्रेस दोनों में विश्वास रखते थे। वे मन्त्र-कारिणियों के प्रति भी सहानुभूति रखते थे मत्स्यग्रह आन्दोलन के असफल हो जाने पर उन्हें कितना दुःख हुआ था यह उनकी तात्कालिक रचनाओं में पूरे रूप में चित्रित है। इस असफलता पर उन्होंने लिखा

आज स्वर्ण की धार कुण्डिता है खाली तूणीर हुआ
 विजय-पताका झुका हुआ है लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ
 × × ×
 हलचला के बीच भी बाणी रही मेरी अकम्पित—
 और विप्लव भी न कर पाए सुघटमय गीत खण्डित—
 साध की यह किंतु दखा गूँठ है आसोग मण्डित
 और मैं बस रा रता हूँ हिचकिया के राग गा गा।'

स्वातंत्र्य संग्राम में उनकी योगदान बहुमुखी तथा अद्वितीय था। उनमें कारिणियों के समान आत्मत्याग और सच्चे यादों के समान शौर्य था। देश के लिए उन्होंने कुछ भी त्यागन में मोह नहीं किया, अपना धरबाग, पढ़ाई लिखाई सब कुछ। कांग्रेस संगठन और देश की जनता में हमीलिए नवीन जी जसा आदर और स्नेह पाते थे, बसा पान का भाग्य विरल आसेवक का ही होता है। वे कई बार उत्तरप्रदेश की कांग्रेस समिति के अध्यक्ष और महामन्त्र चुने गए थे और १९४५-४६ की राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के चुनाव में तो उन्होंने अपने प्रतिद्वन्दी का ८५ वें मुकाबिले १७७६८ मना में पराजित किया था।

सन् १९८७ में देश के स्वतंत्र हो जाने पर उन मन्त्रिधान परिषद के सदस्य मनोनीत हुए। १९५१ के प्रथम आचुनावों में वे बानपुर से लोकसभा के लिए निर्वाचित होकर आए। सन् १९५५ में संसद द्वारा नियोजित भाषा आयोग के

व बरिष्ठ सदस्य थे। सन् १९५७ में राज्य सभा के लिए उत्तरप्रदेश से निर्वाचित होकर आए तथा सन् १९६० में दुबारा राज्य सभा के मन्स्य बन और अपनी साहित्यिक सवाझा के उपलक्ष्य में भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण की उपाधि से भी विभूषित किए गए।

अनक मित्रा के विरोध करन पर भी उन्हा ५१ वर्ष की आयु में जाति प्राय एव आयु के प्रबन्धों को तोड़कर दूसरा विवाह किया और उनका दाम्पत्य जीवन सफ़्त एव सुख रह्य। यह ठीक है कि वे गृहस्थी के लिए नहीं बने थे वे स्वतंत्र और पक्कड थे घर की ज़रूरतों के प्रति घर जिम्मेदार तक थे इसलिए कई बार घर के वातावरण में एक तनाव आ जाता था। उनकी परवर्ती कविताओं में प्रायः यह सिद्ध करन की कागिनी की जाती है कि वे वैवाहिक बंधन में फसकर तन एक मन दोनों से ही अत्यन्त व्यथित हो गए थे। मैं हम कागिनी का ठीक नहीं माता। प्रायः या गून्गुपन अहि आलिगित है जीवन नाम की लम्बी कविता इसका प्रमाण मानी जाती है। किन्तु मैं जानता हूँ कि जिन दिनों यह कविता लिखी गई थी और जहाँ तक मरा खयाल है जिन दिनों यह आजकल में प्रकाशित हुई थी उन दिनों उनका ग्राहस्थ्य जीवन सब प्रकार से सुखी था। बड़ी रश्मि और सरला को तरल वाणी में पुकारत हुए उनका मन नहीं भरता था। 'हम एक भते थे किन्तु व्यथ ही दो हो बड़े' आदि पक्तियों का भी इस तरह पक्ष करन मानो वे इस निष्कष का अकाट्य प्रमाण हो कुल मिलाकर एक भौंडा कागिनी है।

स्वतंत्रता के बाद का उनका राजनीतिक जीवन अवश्य निष्प्रिय सा हुआ गया था। भारत की जनता के लिए उन्होंने जो स्वप्न दखे थे उनका कहीं भी पता नहीं था। स्वतंत्र हो जाने पर भी भारत की पन्तित मूक जनता तिनमिला रही थी। विधान बदल गया था लेकिन उन्हे प्रशासन बदला हुआ नहीं लगता था। वे त्याग और तपस्या के वातावरण में पले थे इसलिए एक सच्च सिपाही के समान अपने कर्तव्य को निभाते रहे। उन्होंने स्वतंत्रता के पश्चात् अपनी सवाझा की हूडी भुनाने का प्रयत्न नहीं किया इसीलिए लोग उन उन्हे असफ़्त राजनीतिज्ञ की सना दी। सच कहें तो वे राजनीतिज्ञ थे ही नहीं। वे एक सहृदय भावुन रस हूध फकीर थे जिन्होंने अपनी तल्लीनता में जा सामन आया उस निभाया और उस अपना सखस्व दिया। फिर वह चाहे राजनीति की चाहे साहित्य चाहे काइ

व्यक्ति। मन और बुद्धि से व कही रह हा आत्मा उनकी सदा यश प्रदान ही पूछती रही और उमन उह क्षणिक जगहो म चिह्न होकर बैठन ही नही दिया। वम व क्या नही थे। कवि और राजनता होन क साथ व एर अच्छे मद्यकार भी व। समय समय प्रौढ आजपूण एव शक्तिशाली गद्य लिखन म इनका सानी नही था। उनकी गद्य शक्ति का अदाज कविता-संग्रहा को भूमिकाया साहित्य समा-राहा के प्रकाशित उनक अघ्यश्रीय भाषणा और 'प्रताप क लेखा और सम्पाद-कीया मे सा लगता ही है जा उनक प्रौढ काल की रचनाए थी, किन्तु उनकी पहली ही प्रकाशित गद्य रचना सतू नामक कहानी से भी यह बात साफ हा जाती है कि उनकी उस दिशा म भी अनन्त सम्भावनाए थी। यह कहानी नवीन जी न मन् १९१७ म 'सरस्वती म प्रकाशनाथ भेजी थी और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को उसकी भाषा भाव आदि की गणन स उसक मौलिक हान म सद्ध हूया था और उहाने नवीन' जी को लिखकर पुत्रवाया था कि कहानी किसी बगला कहानी का अनुवात् तो नही है। बगला की एसी ही धाक थी उन दिनो। उनक भाषणा म ता एक अनोखा अोज और विद्वत्ता हाती थी, व घटो धाराप्रव ह रोन्त रहन थ। उनकी वाणी युवका क हत्या को भकभोरकर रख देती थी। दिनकर न लिखा है 'जब उम नर गादूल के बालन की बारी आती तो बादला म न्दरें पड जातो छन चरमरान लगती और सत्य का प्रकाण अपन स्वाभाविक रूप म खुलकर बाहर आ जाता।

उनक कविता पाठ का टाठ तो निराला ही था। वाणी म अजीब आकषण था जो किसीको भी अप्रभावित नही छाडता था। जय वे भाषण दत ता जस अगारे बरमात। जब व पालयो मार रीढ भीवी बर सीना गीचकर अोजस्वी स्वर म कविता पाठ करत तो श्रोतागण भी उनक साथ भूम उठत। वे पूरी तमयता के साथ कविता पन्त वे कभी कभी कविता मुनात-मुनात उनक नय आद्र हो जान थ। भक्ता क पदा को गात हुए भा व भावविह्वल हो जान थ। टमग का 'भणित' सुनकर उनका भाव विभार होना ता उह उन बर पुण्या म अग्रगण्य ही बना दता है जो बहुत जग नाही।

आन्दोलन क युग म उनकी पत्रकारिता तलवार की चमती थी। सरकार राट्रीय पत्रा एव पत्रकारा को हर प्रकार म नग करन म लगी हुई थी लकिन नवीन न सच और सो भी पूर जोर क साथ कहने म कभी आगा पीछाना

वा-कृष्ण 'नर्मा नवीन'

किया। जब अघ्न लसा के कारण उह तत्कालीन सरकार ने तीन चार बार गलतान की सजा दी थी। अघ्न का दमन करने और अघ्न का पक्ष लन म व सजा दूँ और अघ्नही रह।

भारतीय सविधान म हिन्दी को राष्ट्रभाषा का जो सम्मानित पद प्राप्त हुआ है उसम नवीन जा का योगदान अविस्मरणीय है। उनक लेखे हिन्दी समूची राष्ट्रायता ही थी और इसीलिए उनक लिए उहान बडे स बड व्यक्तिवा स टक्कर नी बडे म बड विरोध का सामना किया। सविधान परिषद क दिना म जिहान उनका काम करत ग्या है य जानत है नवीनजी क हृदय म हिन्दी क प्रति कितनी प्राग थी। हिन्दी क प्रश्न पर अनक बार नहरूजी म भा उननी भटप हो जाती थी। वास्तव म उनक बिना विनापकर ससद म हिन्दी निरावयम्ब मरस्वता हो गई है।'

नवीन जा महापुरुषा म भी महापुरुष थ। उवता कहुना उनक मानव-तत्त्व का अघ्नानित करना होगा। उवता मानव क दुख सुख हृदय विषाद गुण अथगुण को क्या समझ। जा भी उनक सम्पक म अघ्न सम्पन्न और साथक हुआ।

बाई भा उचित शीघ्र ही अघ्न को उनक परिवार का बना ले सकना था उतना उदार था उनका मन इतना विनाल था उनका अग्नि। परिचय शीघ्र ही अघ्नमायता म बदल जाता। मित्रता को व अघ्नकारिकता क स्तर पर न लेकर पाश्चिमायिक स्तर पर उत थ। उन जसा सहायक कृपालु मित्र पाना वास्तव म बहुत बडा मौभाग्य था। मित्रा क लिए ता व अघ्न प्राण तक योडावर करन का तयारहा जाने थ। गुणजी न निक्वा है गगन दाकर म जम अपना लन की महज गति थी वस ही धानकृष्ण म अघ्नना ही जान ती। अघ्न मीयता दाना का नसर्गिक गुण था। एक म स्वावरण की क्षमता थी दूसर म समपण का क्षमता। यति उनक साथ किमान काइ एहमान कर लिया तो जम भर उसक कुनन रह। निसक प्रति श्रद्धा उपन्न हुई उमर चरणा की भूत बन गए और अघ्निकनों की भा स्नह उटावर आसमान पर चढा लिया।

अघ्न विरोधिका क प्रति भी व उदारता का व्यवहार करत थ। पीडा पुरुषान वालको हृदय म लगा लन की उनम अघ्नार क्षमता थी। उनका द्वेष गहन मिद्वान्त क प्रति हो सकता था किमी अघ्निक के प्रति नहीं।

यौ व जन्मजात विद्रोही थे। वे जिस गलत समझने उसका खुलकर विद्रोह करना उनका धर्म था। अनुचित बात का व किसी मूल्य पर भी सहन को त्याग नहीं हो पाता था। कहते हैं, पहले गणतन्त्रीय कांग्रेस मंत्रिमण्डल में नरहजी न उह उपमन्त्री बनने के लिए आमंत्रित किया था लेकिन उन्होंने किसी निश्चित कारण के आधार पर इस स्वीकार नहीं किया। अपना विद्रोही स्वभाव के कारण वे १९५४ में ५ मास के लिए कांग्रेस से भी पृथक् कर दिए गए थे बाद में स्वयं नवाहरलाल जी ने इस नियम पर इरताल फेरी। वे आजीवन पुरातन स्त्री नीतियां में सश्राम करते रहे। बंधी बंधाई लीक पर चलने में वे अपना अपना समझते थे। उनका जीवन भयंकर संघर्षों में बीता। फिर भी उन्होंने कभी अपना सतलन नहीं रखा।

एक ओर सहयोग और विनम्रता तो दूसरी ओर सिद्धांत के प्रति दृढ़ता और स्वाभिमान, एक ओर दानविद्या की सी गम्भीरता तो दूसरी ओर बालक की भांसी मरलता, एक ओर फक्कड़पन दूसरी ओर शालीनता, एक ओर तसकार तो दूसरी ओर पुचकार एक ओर गजराजोस टकराने का माहस तो दूसरी ओर चीटियां से दब जा के चाव एक ओर अगारो का ताप तो दूसरी ओर सुमा का पराग, एक ओर घनगजन तो दूसरी ओर फुहारो की रिमझिम एक ओर ताण्डव तो दूसरा ओर लास्य, एक ओर म हलाहन तो दूसरी में अमृत, अजीव विरोधी गतिविद्या का सम्मिश्रण थे श्री बालकृष्ण गर्मा नवीन।

अहवार और यथे अभिमान तो उन्हें छू तक नहीं गया था, यही कारण है कि वे अपना मित्रा और बडा में भी कहने में नहीं चूकते थे। हाजिर जवाबी में एतने पर कि दूसरा चुप ही रह जाए। एक बार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उनमें बसधारी में कहा 'काह हा बालकृष्ण तुम्हारे यू प्रयत्नी कहा रहते है ज कर शारे में तुम्हें सत्र सजनी सत्ता सतीनी प्रान ब्रान लिखा रहते हा ?

नवीन जी ने धार में उत्तर दिया 'अब तुम वृत्त मया का करिहो इन सजनी का मरम जानि व।' उनका कहना में बटुतान हाकर मधुर चुटकी भर हो सकती थी।

नवीन जी पुरातन के स्थान पर नवीनता की स्थापना के पथपाती थे किन्तु उनका विकासवादी की स्मारक की नीव भारतीय संस्कृति ही थी। इसीलिए उन्हें मावस के बजाय गांधी और टिडुप्पानी के बजाय हिंदी टाक लगते थे।

वे अत्यंत भावनाशील व्यक्ति थे। प्रेम को वे अत्यंत कारण की गान्धित प्रवृत्ति

मानते थे। उनका हृदय कामल एवं निश्चल था। उनकी भावुकता सबका हित करना जानता थी। किसीका अहित करना नहीं। किसीका भी दुखी देखकर उन्हें दुःख होना था और अपने सामर्थ्य से बाहर जाकर भी उसकी सहायता करने का प्रयत्न करते थे। उनकी उदारता कई बार तो मित्रों और परिवार के लिए कष्टकारक हो जाता था। किसी किसी बार तो अपने पास कुछ न होने पर वे अपने मित्रों से मागकर सहायता कर देते थे। एक बार एक विद्यार्थी ने परीक्षा गुल्फ के अभाव में उसका क्या कुछ नुकसान हो जाएगा यह बताकर कुछ रुपये मागने लगे। नवीन जी के पास पैसे नहीं थे। उन्होंने उसी समय अपने एक मित्र से कुछ रुपये उधार लिए और उम विद्यार्थी का नोट लिए। मित्र महोदय ने उससे सब जानकर पूछा नवीन जी का क्या है यह विद्यार्थी झूठ ही बोल रहा है। नवीन जी ने उत्तर दिया भाई वहना झूठा है। सच है। आवश्यकता तो सच्ची होगी। मित्र महोदय का थड़ा से सिर झुक गया।

नवीन जी फकीर बादशाह के जीवन भर के अर्पाभाव में रहे। प्रताप परिवार से इन्हें ५०० रुपये मासिक मिलता था। लेकिन इस रकम का अधिकांश अमहाय परिवारों के ही काम आता था। नवीन जी उसमें से एक भी पैसे अपने काम में नहीं लेते थे। आयकर का हस्तक अर्पण वे उम अपनी छाया मानते थे। अपनी निधनता और अनिश्चलता पर उन्हें नाज था। सग्रह के नाम से तो उन्हें घृणा ही थी। वे कल्प करते थे मरा गरीब भिक्षात्र से पोषित है अतः मुझे सग्रह करने का क्या अधिकार है। वे दते थे लेकिन उसके बदले में धर्मवाद की भी कभी उन्होंने अपेक्षा नहीं की। क्योंकि यह वे किसीपर एहसान मानकर नहीं अपना कर्तव्य मानकर करते थे। बनारसीनास चतुर्वेदी के गणना में मनुजना महोदयता परदुःख कातरता और उदारता की दृष्टि में नवीन जी का स्थान वनमान लखको और कदिया में सबसे ऊंचा है। जिसने क्षण भर उनका सम्पर्क पाया जीवन पथ तो उन्हें भुला नहीं सका।

नवीन के अंतिम दिन बड़कष्टमय रहे। ता का राग और मन का कलंग दाना न मिलकर अलमस्त नवीन को निरीह बना लिया था। १९५५ से लेकर मृत्यु पथ तक बीमार में ही रहे। इन चार पाँच वर्षों में उन्हें अनेक बार अस्पताल में दाखिल होना पड़ा। उनके ऊपर पक्षाघात के तान आक्रमण हुए। पक्षाघात के अनिश्चित हृदय राग रक्तचाप और मधुमेह का कसर आदि अनेक

बीमारियां न एक साथ उनपर आक्रमण किया था। बीमारियां के चंगुल में एक चार पंखों के छूट ही नहीं। उनकी बाणी चली गई थी एक हृदय तक स्मृति नहीं। हाथ-पंख, खर गतिहीन ही हो गए थे। वह मध्य मुखमण्डल पीला ज्योतिषुज नत्र ज्योतिहीन और मुँह हृष्ट पुष्ट गरीर हड्डियां का लचा-मान रह गया था। बाणी के बावजूद कि प्रकृत मूक ही जान में क्या कष्ट और क्या ही सबता है ?

अन्तिम वर्षों में वह पूजन स्थापित हो गए थे। मद्रास की माला पहनने लग गई। रामायण तथा विनयपत्रिका और एक कुठ मंत्रा का भी नियमित पाठ करत थे।

उनकी मृत्यु में कुछ दिन पहले बीमारी की अवस्था में ही उनका जन्म दिवस के उपलक्ष्य में राजधानी के साहित्यकारों ने उनका अभिनन्दन किया था। यह उत्सव अपने दम का निराला ही उत्सव था। मारा मन्त्र साहित्यकारों ने ही वहन किया था। जिनसे जहाँ मुना लौटा आया। किसी भी प्रकार की लड़क भड़क नहीं थी अर्थात् शान्त एवं निमग्न वातावरण में ही वे साहित्यकारों ने उनको जा के चरणों में श्रद्धा के मुमन्य चलाए। तिनकर जी की आँखें उतार गमपित किया जानवाला अभिनन्दन पत्र पत्र हूँ भर भर आती थी और वित्तन ही साहित्यकारों की आँखा से तो धारा ही बरही थी।

तब पर तब उनकी स्थापितताजनन ही थी। मृत्यु में तब चार दिन पहले उनकी चाना भी तुप्त हो गई थी। दीपकाल तक दसहनीय बनना और वषट् सहन के पत्रों में महामानव ने २६ अप्रैल मन् १९६० का हमारे पत्र अन्तिम सामने था। उनकी मृत्यु का समाचार पाकर दम के साहित्यकारों ने राजनीतिक जगत् में शोक की एक लहर लौट गई।

उसी रात का उनका शव दिल्ली में ले जाया गया और २० अप्रैल १९६० को दाहकर्म का कर्म की जरूरत के आत्मा का डोला सजने भवन पट्टन गया।

श्री बालकृष्ण राव ने उनका वार में किया है यदि किसी उपवासवार में नवान जी के शिवन का कल्पना की जाता उन पर नायक का चित्रासन किया जाता तो हम पायें यही कल्प कि उसने अतिरजना की है। हम कल्प कि न ता कोई शनना गरल गद्य भावुक उदार और माहमी जाता है जितना उमन अग्रन

परिचरनायक को बताया है और न एम नरपुंगव के अन्तिम दिन इतने विपाकत ही होते ह। पर यह अतिरजना किमी उप-यासवार की नहीं थी—न यह अति रजना हा थी। और एक उप-यासवार भाई अमतराय न 'नवीन' जी का रसतरह याद किया नवीन जी का आत्मी जानता बाद का था पहले प्यार करता था क्योंकि वह खुद आदमी को जानने बाद में पहले प्यार करने थे। बड़ा कठिन है जिन्दगी में रीत को निबाह सकना मगर उन्होंने निबाहा और एसा खुबमूरता के साथ निबाहा कि आज जय प्रचल गए हैं ता एसा लगता है कि उनके साथ एक युग खता गया है।

कृतित्व

नवीन जी न जिन दिना लिखना शुरू किया वह साहित्य में रटी रटाई वाता का बड़े बधाए तरीके से बहने का युग था। द्विवेदी-युगान धोर आत्मवाद एवं इतिवृत्तात्मकता में पडकर काय का आत्मतत्त्व गूब चुका था। रूढ़ि रीतिया नीतियो लक्ष्मणपचारों और पाप पुण्य के अस्वाभाविक एवं विवृत्त रूपा को महत्त्व देने के कारण जीवन के स्वाभाविक स्थात अवरुद्ध हो रहे थे। व्यक्ति व्यक्ति के बीच के स्वाभाविक सह-सम्बन्ध को हीन और अनतिक तक समझा जा रहा था। बाध्य में कोमलता और मिठास का करीब-करीब बहिष्कार हो चुका था। आदर्शों को अपने जीवन में उतार बिना उनका उपदेश जितना योग्यता हा सकता है कविता उतनी छावली ही गई थी। जा भी कविता लिखना चाहता था उस कविता में सदा देग, समाज धर्म और नीति की ही बात करनी पडती थी। हरे कवि गूबदव कबीर राणा प्रताप या दयानन्द का छोटा मोटा संस्करण बनकर बात करता था।

द्विवेदी युग खडा तो रीतिकाल का हरे शृंगारिकता के विरोध में हुआ था लेकिन कालांतर में उसने इस विरोध का ही दूर कर लिया और फिर जमा स्वाभाविक था अनके एम लोग सामने आए जिन्हें जाने अनजाने द्विवेदी-जी और उन जने अय गण्यमाय साहित्यिक अधिनायकों जस भागित होने लग। उन्होंने आदेश का स्थान यथाथ को और सो भी बिलकुल व्यक्तिगत यथाथ यानी अपने ही सुख दुख और आंतरिक सन्धय और अवपणों को दना शुरू कर दिया। अनवस्था के महसूस की कमी के लिए कुछ पश्चिम के रोमा-

टिक कविया का प्रभाव कटिए उहान अपन मन की दुःखिमात्रा और निशाया का बहुत धुधला बनाकर पग सिया अर्थात् जन एकदम प्रतिनिया म अभिधा को नितात गीण रखकर व्यजित किसी अय की बहुत ही बडी एक गुजाइग छाड दी । प्रसा पत, महात्मी यहा तन कि 'निराला' और माएनलाल चतुर्वेदी की कविताए भी अधिकतर एसी तरह की कविताए कही जा सक्ती हैं । बालकृष्ण गर्मा नवीन लगभग उस समय क अकल कवि हैं जिहान दाअर्थी और धुधली बाँ न करन जो जमा ग्या ममभा उस वसा ही कहा । इसीए हमन दरसा क वक्रे क बाद फिर सरस, सगकन और द्विधाहान कविता क दगन किए । कविता क इतिहास को अविच्छिन्न करक कह ता कह सकन हैं कि क कालिदाम, ायव विद्यापति घनानंद तथा श्रीधर पाठक की परम्परा म आन हैं । उहान सहज मानवीयता को अपन काय का आलम्बन बनाया और हिन्दी साहित्य क गरीर म स्वस्थ रक्त का संचार करके मानव हृदय की चिरंतन अनुभूतियों का वाच्य मय चित्रण प्रस्तुत किया ।

नवीन जी न सन् १९१६ १७ स ही लिपना प्रारम्भ कर लिया था । उनका साहित्यिक जीवन 'सन्तू कहानी म आरम्भ हाता है जो मन् १९१८ म 'सरस्वती' म प्रकाशित हुई थी । नवीन जी न चालीम वष स अधिक काल तक साहित्य-रचना का किन्तु प्रकाशन की ओर म ध सदा ही उठासीन रहे । पत्र पत्रिकाआ म भी उनकी रचनाए जब-तब ही दिखाई दती थी । राजनीतिक क्षेत्र म व्यस्त बन रहन के कारण क साहित्य म अपन का कटित नही कर पाए । लिखना नवीन' न भी पत तथा 'निराला क साथ ही आरम्भ कर लिया था किन्तु पत तथा निराला सा म्याति तो दूर कवि की तरह क बहुत दिना तक जान ही नही गए । रामनरेग त्रिपाठी द्वारा सम्पादित १९२६ म प्रकाशित कविता-कौमुदी के तृतीय संस्करण म भी नवीन जीको स्थान नहा मिला है अर्थात् आलोचका का दृष्टि म उम समय तक उह कवि क म्प म मायता प्राप्त नही हुई थी । अतःता अपनी राष्ट्रीय कविताआ क वारण के जनता क निकट अपरिचित तब भा नही थ ।

उनका मत्रप्रथम कविता-संग्रह 'कुबुम सन् १९३६ म प्रकाशित हुआ । इस संग्रह म अज एव सटीबानी की रचनाआ क माय प्रजभापा की रचनाए भी सम्मिलित थी । कुबुम क प्रकाशा क बाद फिर बहुत दिनों तक को — —

आया। दूमरा संग्रह रवि मर्यादा सन् १९५१ में प्रकाशित हुआ और फिर १९५२ में श्वासिता तन्ना अणसक दो गीत संग्रह एर क बाए एर प्रकाशित हुए। इन गीत संग्रहों में मुख्य रूप से प्रेम सम्बन्धी एवं गीण रूप में अघ्यामपरक दाग निरक गीत हैं। विनायात्री की स्तुति में लिखे सात श्रद्धापरक गीतों का एक संग्रह विनोबा स्तवन का नाम से सन् १९५२ में प्रकाशित हुआ। सन् १९५७ में नवीन क काय का कीर्ति स्तम्भ उम्मिता महाकाय प्रकाशित हुआ। प्राणापण खण्डवाव्य का प्रकाशन उनका महावसान के बाद हुआ। और हम विषयाया जनम के नाम से एक लगभग मुकम्मिल कविता-संग्रह के प्रकाशन के बाद अर उनका बहुत कम काव्य अप्रकाशित बच गया है।

मैंने उम्मिता के महाकाव्य का उनका कीर्ति-स्तम्भ कहा है अतः उसका सम्बन्ध में तो गलत कह देना अनुचित न होगा। यदि यह महाकाय उचित समय पर प्रकाश में आ जाता तो इस कथन की सत्यता सहज ही सिद्ध हो जाती। काव्य सन् १९३४ में ही पूरा हो चुका था लेकिन प्रकाश में आया सन् १९५७ में २३ वर्षों बाद। छ सगों में विभाजित इस महाकाव्य में कवि ने विरहिणी उम्मिता की कल्पना का काफी दी है। कल्पना रस के चित्रण के साथ कवि का प्रीत कल्पना और नई नई शूभों पाठक को मोहित करती चलती है। यह महाकाय त्रिचारों का अतना नहीं भरभारता जितना भावनाया का। कवि ने लिखा है
 इस अर्थ को मैंने मन स्तर पर ज्ञान वाती त्रियाओ प्रतित्रियाओ का दपण बनाने का प्रयत्न किया है।

नवीन जी ने राम की वन यात्रा का आय मस्कृति की एक अथपूण महार यात्रा माता है

आता आय मस्कृति जीवन का यह शुभ प्रथम प्रभात हुआ
 रवि कुल रवि की प्रथम विरण में अस्वार अनात हुआ
 बह बरर अनान मुनाचनि वह जडता जड गगन की
 हान का है नाट आ गई घड़ी प्रात के मंगल की
 नव सत्त गान गुचिता के हम वाहक निष्कामी है
 यह आदण प्राप्त करने का—राम खन वन गामी हैं।

उम्मिता को कवि ने नारियो के आदण के रूप में चित्रित किया है और उसका चरित्र में गम्भीरता त्याग धय साहस सहिष्णुता कनय निष्ठा तथा

भाव, भावुकता आशा लज्जा आदि सभी गुणों के दंगन कराए हैं। काव्य में उमिला की महानता के सम्मुख सीता का मस्तन भी आदर न भुक् जाता है

मैं लज्जा में गट जाती हूँ देख तुम्हारा यह बलिदान'

कवि ने उमिला को सरल हृदया भावुक अवला के रूप में ही नहीं, बुद्धि मती-वीर नारी के रूप में भी प्रस्तुत किया है। दशरथ की यायहीन अधिनायकवादी नीति का बहतीव्र विरोध करती है

बह दो आज पिता दशरथ स कि यह अधम नहीं हागा
बह दो, लक्ष्मण के रहने यह, घोर कुबम नहीं होगा,
राज नहीं कैवेयी का है दशरथ का न स्वराज्य यहा
जन गण मन रजन-वता ही हाता है अधिराज यहाँ।

कवि ने मन्त्र मन्त्री के सम्मान का रक्षा की है। लक्ष्मण वन-गमन के पहले उमिला से अनुमति लेते हैं। यहा तक कि उहाने कैवेयी के चरित्र को भी कालिमा-भण्डित न करके उमे उदात्त बनाया है—

कवयी मा दूर दग की हैं व हैं अनुभवशीला,
युद्ध मधि म प्रकट कर चुकी ह व निज निपुणा-नीला,
उत्तर पदिचम स प्राची तक विस्तृत है उनका अनुभव,
इसीनिए उनके द्विय म ह आया एक भाव अभिनव।

× × ×

पर हम बार, दृष्टा है उनके गौरव का कुछ ऊँचा लक्ष्य'

इस कारण की कल्पना करके कवि ने कवयी के प्रति बनी धारणा ही बलवती दी है। साक्षर म पदचात्ताप का आधार देकर उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न की गई है। लेकिन उमिला में कवयी का चरित्र जिस रूप में चित्रित किया गया है उमत्त प्रभावित होकर पाठक के हृदय में स्वयमव उससे प्रति आदर एवं श्रद्धा का भाव जाग्रत हो जाता है।

नवीन जी हम महाकाव्य के पात्रों को मानवीय धरानल में ऊपर उठाकर नहीं ले गए हैं। भक्तिभाव की एक भीनी-मी भक्त अवश्य जहा-तहा दिखाई पड़ जानी है।

इस महाकाव्य पर उत्तर प्रदेश सरकार ने नवीन जी को पुरस्कृत किया

था। पुरस्कार तो कदाचित् उस साहित्य अकादमी का भी मिल जाता किन्तु नवीन जी ने कहा स उधे हटा लिया था। प्रसंगवत् कहना है कि जिस वय नवीन जी की उमिला प्रकाशित हुए साहित्य अकादमी पुरस्कार के लिए विचारणीय पुस्तकें मन्वै शामिल की गईं। नवीन जी को तब तक लिख दो दौर का चुके थे और उनकी वाणा की गई थी। लिरान लिखान का तो उनका लिए कोई सवाल ही नहीं रहा था। इसलिए हम सब लोगो का लगता था कि हम अष्टि स भी बड़ी ग्रन्थ पुरस्काय है। मैं उन टिना अवसर उनका पास ५ विद्यतर पत्र मे चला जाता था और उनका टार बगरा सालनर उह सुता दता था। एक दिन टाव खोलते हुए साहित्य अकादमी के सप्रटरी का पत्र आता, जिसका आगम यह था कि चूनि आप किसी तरह उत्त पुस्तक का विचारणीय पुस्तक की सूची म नही रहने दना चाहते इसलिये हम बड़ी लाचारी के साथ आपकी दृच्छा का पालन करते हुए उमे विचाय गही मान रहे हैं। एक और मित्र साय थ था रदनारायण युवन। हम दोना बडे हैरान हुए और उनसे सबव समभना चाहा ता उहो इशारा म कहा या ही।

मैंने कहा स जावर कहा। कहा हैरान हुए और फिर सोचकर बोले, "गायद सियारामशरण की कोई पुस्तक भी बहा है। व उसका बडे नही आना चाह।। स्मरणीय है कि उस वय किसी हिन्दी पुस्तक को साहित्य अकादमी पुरस्कार नही मिला।

वकिता यदि अपनी ही अनुभूति की अभिव्यक्ति नहीं है तो वह एक सखड हैड चीज होकर रह जाती है। नवीन जी न लिख है काय तो एक प्रकार के व्यक्तिगत उमाद की भावनामूलक कल्पना सहगामिनी, सत् चिन् आनन्दमयी अभिव्यक्ति है। मैं स्वयम अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति म कहा तक सदाश्रयी रहा हू इसम सद्धका अवसर नही मिलेगा। नवीन जी बडे भावुक, प्रमी और सौन्दर्यसिक्त कवि थे। उहाने जीवन म जब जसा अनुभव किया काय बड कर दिया। उहाने अपनी अनुभूतिया को ही काव्यरजित करने का प्रयत्न किया है। वे आतरिक प्रेरणा से प्ररित होकर ही लिखत थे। बहुत दिना से नही लिखा है इसलिये लिखना चाहिए या अमुक अवसर था रहा है कुछ वह रखना ठीक रहगा ऐसा उहाने शायद ही कभी किया हो। यदि बाहर ने उनका भीतर को नही मया तो उहोन अपना आतरिक पठिया उस कभी नही सौपी। और जब

बाहर न भीतर उतरकर हलचल पदा की व बिना गिंछे नहीं रह गये । उनकी प्रत्येक कविता के पीछे एक इतिहास है । उनकी कविताएँ उनके लिए मनोरंजन का साधन न हाकर मायवी थी । खरी अनुभूतियों के कवि होने के कारण ही उनकी रचनाओं में स्वाभाविकता और सच्चाई के मन का छूने की अपार शक्ति है । अपने समकालीनों की तरह 'यय की पञ्चीकारी' एवं कल्पना की गहनविहारी गरिमा के व कायल नहीं जान पड़त । उनके काव्य में कद बाहर तो ग्रामीण तर-नता और सरलता तक है, नागरिक घटना चातुष्य ता लगभग है ही नहीं ।

राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने तथा अपने गद्य के कारण आरम्भिक काल में 'नवीन' को राष्ट्रीय एवं प्रगतिवादी बलि के रूप में प्रख्यात रहे । उनकी कुछ राष्ट्रीय एवं प्रगतिशील रचनाएँ अत्यंत प्रसिद्ध हो गई थी । उस काल में भारत भारता के पद्या की तरह ही नवीन की आश्रय कविताएँ भी जनता के मन को आदावित करनी रहती थी । कई बार उनकी एक पक्ति भी जनता को आत्मबलिदान के लिए प्रेरित कर देती थी

चल चल चढ चल, मर मत रतू बलिदानो के पुज,
दम नहीं न लुभावे तुमका यह जीवन की कुज,
मधुर मृत्यु का नख्य देखकर देने लग जा ताल,
अपना गीत विरोकर कर दे पूरी माँ की भाल,
है जीवन अनित्य कट लेने द तू माह्य बाध
कर द पूरा आत्मनिर्दान का तू आज प्रबंध ।"

राष्ट्र धर्म और राजनीति का एकता का नहीं भावनाओं एवं संस्कारों की एकता का प्रतीक होता है । सांस्कृतिक एकता राष्ट्र का मूल तत्त्व है । संस्कृति के प्रति उच्चतम भक्तिभाव ही राष्ट्रीयता का आधार है । अलबत्ता यह अनक रूपों में प्रकट हो सकती है । अपने भूत के प्रति पूण श्रद्धा, भविष्य के प्रति अदम्य आस्था दान की उन्नति के प्रति अगाकुलता आत्तायिया स देश की रक्षा करने की आतुरता दान के भीतर-बाहरी शत्रुओं को ललकारने का साहस, दानभक्ता का यण गान तथा उस हर प्रकार से सभृद्ध दानों की लाजमा उनके काव्य में सबश विद्यमान है । उनके कविताएँ राष्ट्रीय आन्दोलन का काव्यमय इतिहास प्रस्तुत करती हैं । नवीन की राष्ट्रीयता यौद्धिक न हाकर आंतरिक और भावात्मन है और तभी उसमें प्राण फूटने का सामर्थ्य है । दान का परतन्त्रता की बहिया में

जबडा दखवर व उत्तेजित हा हुकार कर उठत हैं । उनक सहज-नोमल प्राण
विषय और विद्रोह ना उठते हैं

कवि कुछ ऐसा तान मुनाघ्राजिसम उचल पुचल मच जाय
एक हिलार इधर स घाय, एक हिलार उधर स घाय,
प्राणा क लाल पड जायें—नाहि नाहि रव नभ म छाया,
नाग और मत्यानागा का धुंधाधार जग म छा जाय
वरग भाग जलद जल जाय भस्मसात भूधर हो जायें
पाप-पुण्य सत्सद् भावा की धूल उड उठे दायें बायें
नभ का वक्षस्थल फट जाय तारकबूद विचल हो जायें
कवि कुछ एसी तान मुनाघो जिसमे उचल पुचल मच जाय ।

परतंत्रता की स्थिति म सच्चे दंग-मवक का सत्रप्रथम कृत्य यह हो जाता
है कि वह सब कुछ ताव पर उगाकर दंग का परतंत्रता क पाग स मुक्त करन का
प्रयत्न करे । नवीन को दंग क स्वातंत्र्य सनिको पर पूण बिश्वास था उह मालूम
था कि व कभी पीछे पर नहीं हटा सकत । इसलिए जब कभी कायम न पीछे मुड-
कर दखा उह हादिस घटना हुई । गांधाजी न चौरीचौरा क घाट जब सरयाग्रह
बाद कर दिया तो व कितन दु खी और उद्विग्न हुए थ उ होन वसम कितन अपमान
और लज्जा का अनुभव किया था यह उाकी तत्कालीन कविताभा स प्रकट होता
है । वस्तुत उहान एम भारतीय जनता की पराजय माना था । वस पराजय क
बानावरण म उनका दम घटा जा रहा था । उहान पराजय गीत म लिखा

धूम गया जा चक्र उमी की धार दखता ताता हूँ
एधर उधर सब तरफ पराजय की ही मुग्घ पाता हूँ,
घाँवा का ज्वलत श्रोघानन आज दय का नीर हुआ
आज सडग की धार कुण्ठिता है खाली तूणीर हुआ ।'

दानता के एस क्षणा म उनक हृदय म निराशा क भाव आत है, किंतु यह
निराशा बहुत दूर तक नहीं टिकती । उनका सनिक फिर उनक विचारक पर
हावा हो जाता है

माना आज छा रहा चहु दिगि यह तम राज्य अखण्ड
पर क्या अभी न जीवन पय म ज्योतिष्कण बिखरे ?

×

×

×

' फिर आयोगी ऊपा हमता, फिर होगा विहान फिर सुन्दर
 फिर न नर अरवी छिडेगी फिर होगी पला म परफर
 फिर म अरण छटा छायेगी फिर हागा दुमल का मरमर
 फिर से ममुद बहगा सन् सन् सन् सन् जागरण समीरण ।

प्रेम और 'वतव्य म उह प्राय एउ मपप-सा दिवाइ दता है लेकिन
 'वनव्य' भावना व सम्पुन आकर प्रम भावना वही पृष्ठभूमि म अपनी जगह
 स्वीकार कर लती है । दग नय आग पय पर चल रहा हा उस समय हृद्य मे
 रम्य मनुहारों आ केन सवती है ?

मास-वष की गिनती क्या हा जहा जहाँ म-व-तर जूमों,
 युग परिवर्तन करनेवा न जावन-वषों को क्या वूमों ।
 हम विद्रोही कहा हम क्या अपन मग के बटक मूमों ?

× × ×

हम सत्रानि-वान व प्राणी वदा नहीं सुल भाग
 पर उजाडपर जेन वमान का है हमका राग ।

स-धवारमम भूतवाल को भुता दन म ही कल्याण है उज्ज्वल भूतवाल की
 रट लगान स कोई लाभ नहीं हम अरना ध्यान मत स हगानर और वनमान म
 केन्द्रित हाकर भविष्य पर ही लगाना चाहिए

' एक ओर कापरता काप मतानुगति विगलित हा जाय
 प्र-दे म् विचारा की यह अचन गिला विचलित हा जाय
 और दूसरी आर कोंपा दन वाला गजन उठ जाय
 प्र-तरिण म एक उमी नागक तनन की ध्वनि मँडराय ॥

अमान 'नवीन जी ववल अग्रजा राज्य की बुलित नीतिया पर ही नहीं भारत
 की मूठ परम्पराया और उसकी वगगत आर्थिक व्यवस्था पर भी प्रहार करन स
 नहीं चूकन थ । विफनता व मूल म व मामाजिव वैषम्य पारम्परिक वमनम्य एव
 अगाधराशा भावनाया को प्यन हैं । जब तक इन दुगचारग का नाग नहा हा
 जाना तब तक भारत ममृद नहीं हा सवता । उहने भारताय जीवन की करणा
 को साकार रान देने का प्रयत्न किया है । स्ति और रीतिया म फमा भारताय
 जनता का द-य तारिद्रप त्यकर उनको आवें सजल हो जाता थी । वनियवान

मे मुक्त करके समान में सुख शांति का साम्राज्य स्थापित करने के लिए
 ध्यान रहने थे

जिनका हाथो में हल-दण्ड पर जिनका हाथों में धन है
 जिनका हाथों में हसिया है व भूखे हैं निधन है
 उनकी ओर न वह भविष्यवाणी भी करना चाहते हैं

मुन तो गर तुममें हिम्मत है नगा भूखा का यह गाना
 अब तक व राधालो का यह विरट तराना मस्ताना
 जिनका तुम कीर्ण समझे थे व ता धारा । निवल मानव
 तो रगा करत व अब तक व धान कर उठे हैं लक्षण

गोपण विषमता एवं अत्याचार का नभनात्य दण्ड पर आस्तिक नवीन
 ईश्वर के अस्तित्व तम में सत्कृष्ण करने योग्य हैं और मानव का ध्यान परोप
 खडे हान की प्रेरणा न ह

लपक चाटन भूठे पत्त जिस दिन दखा मीने नर का
 उस दिन साता क्या न नगा न आन आग इस दुनिया भर को
 यह भी साचा क्या न टटखा घाटा जाये स्वयं जगपति का
 जिनमें अपने ही स्वरूप को रूप दिया हम घृणित विकृति का
 जगपति कहा ? अरे सजिया न वह ता हुआ राग्य की ढरी
 करना समता मस्थापन में लग जाता क्या पतनी दरी ?
 हाड आसरा अलय गक्ति का र नर स्वयं जगपति नू है
 तू गर जठे पत्ते चाणे तो तुम्हपर जानत ह धू है ।

मानव ही मानव का गोपण कर मानव ही मानव का काल बन इससे
 बड़ी विकृष्णता और क्या हो सकती है ? नवीन इस अधम का मिटाकर मान
 वता का मस्तन ऊचा करन की प्रेरणा प्रदान करत ह

हे मानव ! अब तक भेटोग यह जिनमें महा भयकरता
 का रहा आज मानने दखा मानव का ही भक्षणकर्ता
 है दुनिया बहुत पुरानी यह रच बना दुनिया एक नई
 जिसमें सर ऊचा कर विचरे इस दुनिया में वताज कई ।

इस नवान का प्रगतिवाद भी बह सतत हैं किंतु यह वास्तव में
 उनकी राष्ट्रीयता का ही एक रूप है उनके प्रगतिवादी में भावसवादी भौतिक

द्वान की गन्त के प्रजाप भारतीय आत्मात्मवाद की महव ही अधिक है। उनकी प्रगति मार्गों एव विनाश की मानवीय व्यापकता को समेट हुए है। सच कह तो व अपने को किसी वात् विार म सीमित करने मही चले, उनकी दृष्टि वादा सं परे समस्त मानव रित पर ही कद्रित रही। वे सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण की कामना करते हैं

आओ कर द तम क्षार क्षार ! मिट जाये जग का अधकार !'

न विश्व का अधकार मिटाकर गान्धत मानव म की स्थापना का स्वप्न देखने हैं। समार क सकुचित सीमा वचन समाप्त हा मानव मानव मे समता का नाव उल्लि हो। व ईश्वर मे प्राथना भी करते है तो यहां

फँस अनहकार भावना मिटे सकुचित सीमा वचन,

वमे गांधी और विनोबा उनके आत्म पुरप हैं। और आशा उन्हें उहीक वचन और कर्मों के अनुसरण म लिखती है

जग चुकी है वतिका स्थिरवाय तापम की

बैप रही है गहन अधिवारा अमापस की ,

मानो विनोबा क म्बर म स्वर मिनावर नवीन जो भी स्वग की अवतारणा धरती पर ही करना चाहत है

हम लीचकर स्वग

कही यदि उसका ठौर टिकाना है

इस धरती पर जाना है

यनना ह हमको निन स्वामी

ऊच-वृत्ति मन चिन अनुगामी

वसुधा मुग सिचिता करक हमे अगार पन माना है।

जो कि दव दुनभ है उसको म धरती पर जाना है

नवीन को की गठनीयता एव प्रगतिशीलता उत्तरोत्तर परिष्कृत जाना हुई धन म विश्व मानवता म परिणत हो जानो है। या समय-समय पर व विभिन्न वादों त प्रभावित भी रहे हैं लकिन न किसी भी वात् लिप म वैधकर नही रहे। उन्होंने निगा है मानव मानव है यह वचन सामतवाद, पूजीवात् वग वात् भीतिवात् आदि वा भुरजा मात्र नही है। उस समय के अत्यंत प्रति

वात्कृष्ण गर्मा नवीन

प्लित निमम नतिवता व कठपरे म बाद होकर रहना 'नवीन' जस सरस
 भावुक बेलाग घौर बहादुर आत्मी व वस बे बाहर की घात थी। उनकी
 स्वच्छंद वि तु बरयाणकारी मति व छूछे छपाटे म जहा त्पिण बहा विधि
 निपथ और परम्पराया व दुग त्हत उजर आत है

कूजे न कूजे म बुभनवाली मरी प्यास नहीं
 बार बार ला ला कहन का समय नहीं अभ्यास नहीं
 घर । बहा द अविरत धारा बूत तूद का कौन सहारा
 मन भर जाय, जिया उतराए डूबे जग सारा का सारा

तमयता निच्छलता निप्टा, वासना उमात् एव मस्ती की अपूर्व छटा
 व ऐसे गान आज भी दुलभ हैं

दवि भुजाधा म आलिगन वा भर रहा उछाह
 राम राम म समा गई है घुत मिलन की चाह
 × × ×

नभन चरण नि साधन जीवन जन धन हीन प्रवासा में
 ज्योति अखण्ड प्रचण्ड जगाये विचरेंगा स यासी मैं ।
 तान गिखा प्रज्वलित अनगिनत तिसतायमी मुझे दिशा
 वह प्रकाश आलोक हरेगा वन जय हिय की श्रुद्ध निगा ।

उनके प्रेम म प्रबल आरंग है । किन्तु वह हतबुद्धि नहीं है उसने माना किसी
 पारदर्शी बुद्धि या तान न अनुभव कर लिया है कि जा उस प्रिय है वह कोई
 छोटी मोटी चीज नहीं है वह तो भूमा है और सुख अल्प म नहीं है इसी भूमा
 म है

कारी निसि, कारी अबनि कारी तिसि चुपचाप
 कारी नयन बनीनिका बार वंस कलाप
 कारे द्रुम कारी लता कारी सब ससार
 कारी-कारो है रहा हिय विछोह ससार ।

द्विरह का शाश्वत तत्त्व नवीन जी का जितना दूता है उतना मिलन नहीं ।
 नवीन जी न लिखा है मरे जीवन म एक अकारण अमताप एक मधुर चाह
 एक अमिट प्यास एक विपादमयी स्फूर्ति एक अतृप्ति बनी हा रहती है । सुख
 और आनंद के बीच एक हूक सी उठ आती है । मानो सायुज्य-नयोग व क्षणो

म भी विप्रयोग की वासुरी की एक हूक-मी मुनाई दी जाती है ।' इन तरह नवीन के काव्य का मूल स्वर प्रेम है और उसमें भी प्रेम के विरह पथ न ही उन्हें अधिक अभिभूत किया है । उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में भी विरह की छाया थी । बाद में तो वे वेदना के गीता के ही गायक हो गए

मैं तो हूँ मन्थल का मृग, प्रिय हूँ न जान कितना प्यासा
मैं न घपन जीवन-वन में वागो कब जाना चौमासा ?

नवीन का मासल भावना का कवि क्या जाता है । उनका गीता में मासल भावुकता है लेकिन यह मासलता उत्तरोत्तर सूक्ष्म होनी जानी है । पाण्डित्य की उन्होंने साधन के रूप में ग्रहण किया है । उन्होंने अपने एक काव्य-मग्न की भूमिका में लिखा भी है, 'यमिद्री की गुडियाँ तो सापान हैं' ।

नवीन जी प्रेम को जीवन का यहाँ तक कि उक्ति का माध्यम मानकर चलते हैं

'मानवा की मुक्ति है इस राग श्री' अनुराग में ही
छुट सके क्या राग, जब वे आपछे हैं भाग में ही,
ध्यान उस जतना रहे मुनभे रहे सब तार-नाग
राग में ही मनुज के सब मुप्त, विजडित भाव जाग ।

यह ठीक है नवीन जी मूल रूप से प्रेम के कवि हैं किन्तु उनमें इस पार के लिए तीव्र सलक हान हुए भी उस पार के लिए जिज्ञासा कम नहीं है । उनकी रचनाओं में हम वही हृदय वही गहरा आध्यात्मिक सक्त प्राप्त होत ही रहते हैं । उनका आध्यात्मवाद कभी वैष्णव भक्ति का आचल पकड़ता है कभी रहस्यवाद के झूले में झूलता है । वे ब्रह्म को एक अरु कलाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं तादूसरी ओर निराकार रूप में । जगत के सम्बन्ध में उनकी जिज्ञासा, विस्मय एवं कुतूहल की भावना न कभी भपकी नहीं ली । उनमें हम कभी मूर मीरा, नन्ददाग जैसे तमयता ताकभी नाय सिद्धा और सन्त-सूफियाजमी छु पटाहट के दगन होत हैं ।

आत्मा द्वारा परम सत्ता की खोज उसका मायाकार और उसमें विनय की भावना प्राचीन काल में ही भारतीय काव्य-साहित्य का विषय रही है । नवीन जी ने लिखा है 'इस मानव की मुक्ति का सन्नेग दना और अपने का भी बंधन-भाग से छुटान का मनन प्रयत्न करत जाना यही भारतीय साहित्य का

बालकृष्ण शर्मा नवीन

चरम, अन्तिम, परम उद्देश्य है। समार का वण वण उस अनात मत्ता की राज म पागल हुआ घूम रहा है मगर उस पाग का रहस्य सब नहीं जानो। जीव और वस्तु की समरमता एव एकीकरण रहस्य की अन्तिम परिणति है। जीव माग के व्यवधानों को समाप्त करता हुआ उत्तरात्तर ब्रह्म की आर अग्रसर होता है। कभी-कभी नवीन को लगता था कि उनके पिय तक उनकी तिरही आत्मा की आवाज पहुँच गई है। पिय के साधारण का समय समीप है। प्रति-बनि-मात्र ग कवि का राम रोम पुताकित हो जाता था। एक जगह उन्होंने आत्मा स चिर मित्रा के लिए तयार होने को इस तरह व्यक्त किया है

चन उतार अग रस्तर आभी तू शण भर म होगी पियमय
 अब कसा दुराय सागन से, पूण हुआ तरा शय विशय।
 नत लोचन ! हृदय की नीवी खाल नयन म सहन भाव भर
 दिसता है अपन प्रियतम का जनम जनम का अपना निश्चय
 यह पल्ला यह पट यह अचल भारभूत हो जायेंगे सब
 अरी ! तनिक आन तो द तू उनकी भादक मुरली की लय।

और चिर मित्रन की आतुरता की बेचनी को यत्न करनेवाली य पत्निया

डोता लिये चलो तुम भटपट छोडा अटपट चाल रे
 मजन भवन पहुँचा दा हमको मन का हाँव बहान रे
 बरसा नतु म सब सहेलिया मैंक पहुँचा आय रे
 बाबुल घर स आज चली हम पिय धर नाग त्रिहाय रे
 उनके बिन बरसाती रातें कसे बटें अचूक रे
 पिय की बाँह उसीस रे हो तो मिटे न मन की हूक रे
 छोटी बालो धरे खना तुम आया स या बाल रे
 मजन भवन पहुँचा रे हम का छाटा अटपट चाल रे

यद्यपि गाधीजी और विनोबास सम्प्रेषित उनकी प्राय सभी रचनाएँ विचार और शक्ति प्रधान कविताएँ हंगौर उनमें नवीन जी का गीति तत्त्व मूक हाँ गया है किन्तु गीति तत्त्व उनका प्रधान तत्त्व है। उम उहान दाहा सारठा, कवित्त आदि पाँचौन छंदा के साथ संगत उदू की दहरो तक म आजगया है। कही-नही उहाने राग रागिनियाकाभी आश्रय लिया है। छंद और भाषा पर उनका साधारण नहीं है। वे मान्यमान हैं। आवश्यकतानुसार वे त्रय अथवा खड़ीबाली को ग्रहण

करते हैं। शतावली के विचार में भी उनकी भाषा मसखुन के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है किन्तु उन्हीं प्रज्ञा एव वैराग्य के अनेक प्रचलित शब्द सफ़्त भाव से उनकी कविताओं में आते हैं।

हवा जो पवारी सनकती, बहकती
परिदा की टोली जो आई चहकती
बलिया की लज्जा जा छूटी महकती
तो गाया हम सुध में आई बहकती,

यह जीवन है ? यह तो मरण सतरण है
मजन न हमारा किया विस्मरण है "

साधारण पाठक के लिए यद्यपि उनकी भाषा कुछ दुर्लभ समझी जा सकती है लेकिन अन्त-सौन्दर्य, नाद सौन्दर्य एव चित्र सौन्दर्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से उनकी भाषा की शक्ति मान्यता प्राप्त नहीं है। नवीन का काव्य जीवन, जीवन शक्ति और माधुर्य प्रेम एव कल्पना के सप्त स्वरा से भ्रूत है। एक ओर उसमें हृदय वशीकरण की जीवनी शक्ति है तो दूसरी ओर भक्तिभाव का प्रबुद्ध करने की अनुपम सामर्थ्य भी। नवीन सव्य हृदय एव भक्तिभाव दाना का सतुलन बनाए रखते हैं। कहीं कहीं उनकी भावार्थमयता अत्यन्त तीव्र हो उठती है परन्तु वह बौद्धिक सीमा का अतिक्रमण कहीं भी नहीं करती। नवीन के काव्य में अलौकिकता है किन्तु उसका आधार लौकिक समीप ही है अलौकिक निस्सीम नहीं। लौकिक समीप का ही विस्तार करके उन्होंने उस अलौकिक निस्सीम तक पहुँचाया है।

वर्चनजी के शब्दों में 'नवीन' जीवन का ठोस अनुभूतियाँ विरोध भावनाओं का प्रतिमय प्रचार। मज्ज कल्पनाओं एव सरल अभिव्यक्तियों के कवि हैं।

उचित है उनका लिखावट अस्वच्छ है अस्पष्ट है गुरुरी है। पर वह ही जगह सारगर्भित है मायन है।

मज्ज तरीकें से कह सकते हैं कि 'नवीन' जी ने अपनी ४५ वर्षों की काव्य साधना में नितना विद्या आनंद और प्रकाश दाना दृष्टियाँ न वह विविध और बहुरंग हैं। नवीन जा के उ कविता मज्ज का प्रकाश काव्या और पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख कहानी आदि मज्ज साहित्य पर जिसे नितन गम्भीर विचार होगा उस नितन उनका मज्ज का नव गरिमा मिलगी। नवीन जी अपने जीवन-काल में एक राजनातिक व्यक्ति ही अधिक समझ जाते रहे। जगतानर तो उनकी

बालवृष्ण नामा नवीन

कविताया का पठन-मनन थोड़ा ही सीमित रहा। साधारण पाठक और असाधारण आलोचक तब उनका काव्य-संग्रह बहुत दूर से पढ़ेंगे। कभी राज-नैतिक मंच से तो कभी किसी कवि सम्मेलन में उठाने कविता सुनाकर अनन्त जन समुदाय को विभोर कर दिया तो बहुत सम्भिए। समुदाय के सामने जब वह दूबकर पतल था तो समुदाय समुदाय नहीं रहता था एक व्यक्ति की तरह तत्कालीन हाकर वह सागर सिमटकर जल भावबिन्दु में बस जाता था। 'नवीन जी के काव्य की यह सूची कि वह जितना पठ्य है उससे अधिक श्रव्य है उस इसलिए महान् काव्य का श्रेणी में बिठा देता है। शान्ति समुदाय में विद्वान भी होते हैं और साधारण जन भी। यदि किसी काव्य या नाटक का सुनकर सज तत्कालीन हा जाए तो उसका यह अर्थ होता है कि वह रचना अथाह है और सबका अपना अपना प्राप्य देती है। समुदाय में जा सुनाया जाता है वह प्रायः चुनकर सुनाया जाता है जबकि संग्रह में चुनाया गरीका सन करके प्रायः सार लिखे हुए का पत्र कर दन का मोह हाता है और अस्तिग कई बार संग्रह में अछी कविताएँ सा जाती है। नवीन जी की अनेक अछी कविताया का यही हुआ है। उनका नवीनतम संग्रह हम विपयायी जनम के इसका उदाहरण है। अगर वह एक संग्रह बनकर न आता अलग अलग स्वभाव की कविताएँ अलग अलग संग्रहों के रूप में आती अथवा यदि वे सिरजन की तलकाली नवान दोहावली पावसपीठा प्रलयकर स्मरण दीप और मृत्यु नाम मथकर छ नय संग्रहों की तरह और थोड़े थोड़े बाल के अंतर से आती तो हिन्दी के पाठक और आलोचक शान्ति का आज जो सकाच सहना पड़ता है न सहना पड़ता। वह निस्संकोच और असदिग्ध भाव में नवीन जी को अपना मन और लेखन में वही स्थान दे सकता तो उन्हें दिया जाना चाहिए। यह छपना उपाय एक गान्ध है। लिखन से बड़ा। जो अछा लिखकर अछा छपाना नहीं जाता वह अपने और अपने मित्रों के सकाच का कारण बनता है। नवीन जी ऐसी ही एक कवि थे जिन्होंने अछा लिखा और बहुत यशसिले अपने का छपवाया। अब यह हमारा काम है कि हम उनका प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही तरह के साहित्य को पुराने संग्रहों और मचिकाया में न उबारें उस नई तरतीब और नय आवरण देकर उनका योग्य प्रतिष्ठा दें। पतजा के गान्ध में "नवीन वाणी के उन वरद पुत्रों में से थे जिनकी रस मिद्ध तप पूत आत्मा की मृत्यु स्पष्ट नहीं कर सकती।



संकलन

क्रम

सूखे आसू	३७
मन-मान	८
मृदग-चग	४०
मनोरथ	४१
मदिर हिलार	४२
साकी	४३
नारी	४५
रन भुन भुन	४७
कब मिलेंगे ध्रुव चरण व ?	४८
सातन लेंगे जाग, री	५०
बदालीसवें बप क अत पर	५१
डोल जाना	५३
आज रोम रघों स	५४
अन न कयो यह जीवन	५५
भोम बिन्दु मम टरफ	५६
घन गरन	५७
नग याम कल्पमान	५८
विप्रयोग गीत भार	६०
हम अनिकतन	६२
एक बिन्दु	६३
सत्ता चाटनी	६५
भावी की चिंताए	६६

उद्दीयमान	६८
मधुमय स्वप्न रगीले	६९
ग्रन्था मुकुमारी	७१
एव नीम	७२
प्राप्तव्य	७५
तुम युग-परिवर्तक काल-वर	७७
अदृष्ट चरण-वदना	८०
दुराव	८१
दोहे	८३
वीत चली वास-ती बेला	८५
वर्षा लाक	८७
फागुन म सावन	८९
हिडोला	९१
कयो उलभे मन	९२
दान का प्रतिदान क्या प्रिय	९४
भिक्षा	९५
मैं तो राजन छा ही रही थी	९८
दूर-सा बटता है तुम विन जीवन प्रियतम	१००
प्राणा क पाहून	१०२
फागुन	१०४
प्राणापण	१०
उमिला	११०
गीत	११७
मर जन नायक की वाणी	११८
विप्लव-गायन	१२०
असिधारा-पय	१२३
मह की झडी लगी	१२४
परिगिट-१	१२५
परिगिट-२	१२७

सूखे आँसू

बया बलेजे की तटप घीमी पट्टी
आज जिल मुनसान-मा बर्यो हा गया
आँख व अ-यवन भावा की लट्टी
तोड दी किमन वहाँ धन खा गया ?

इस विषमता की मरतता सूखकर
किस सरोवर मे तिराहित हो गई
इस विपिन की वह कुट्टकनी कूबकर
किम निनादित बेणु-वन मे मो गई ?

मिमवन म ही मज्जा मिलता रहा
कमक की उम बदनामय आह मे
हम विपन्ना का कमल खिलता रहा
दद को जिन मे जगाया चाह मे ।

हाय पर वह ज मरा क्या हुआ
किम निठुर न हाय पट्टी बाँध दी
ओन सोचन जिदु तुम अत्र हा कहा
सूखता है यह विप लो दय नो ।

१४२१

—'कुबुन' न

मन-मीन

मछली मछली, कितना पानी ?—जरा बना दो आज
 देखू कितन गहरे म है मरा जीण जहाज ।
 मन का मछली हुदकी खाकर कह दा कितना जल है
 कितन नीचे कितन गहर कहा पाह का थल ह ?
 पकिस थल सुनील जल हिस मिल हुए कहा हैं एक ?
 मछली मछली, मुझ बना दा कहाँ पाह की रेग ?

वई बार तल स टकराया फिर भी पता न पाया
 ज्यो ही पठा त्या ही उफना कर फिर स उतराया
 जलनिधि क उलीचन को टपकाए बिंदु अनक
 कितु टिटिहरी का धारन छूटा अयाह जल दल
 अब तुमस कहता हूँ मुझको जरा बना दो मीन
 कितन नीचे तल की भूमि सिमितता है सकाण

तरल तरंगें बढ आती ह हाता हूँ हैरान
 ये उठती लहरें सिंचित करती तट का भगन ।
 यहाँ, वहा, सबत्र आप ही आप जनधि का धार
 कीर्णित हो जाता है मम जीवन-सट पर प्रति धार ।
 कसे यह जल का प्लावक विप्लव हादगा गात ?
 मन की मछली कहो हृदय कैसे होगा विश्रात ?

तुम्हें डूबने ही में सुख मिलता है क्या जल बीच ?
 आने में सकोच किया करती हो क्या थल बीच ?
 मेरा जल-थल एक ही रहा है न करो कुछ सोच,
 प्राण नाश का अर्थ ही गया है जीवन का लोच ।
 इधर उधर मुड़ जाने ही से जीवन गाठ बँधी है !
 मछली, मछली इसीलिए अभिलाषा आज सधी है !

यदि थल में आ जाओगी तो प्राण नहीं तड़पेंगे
 द्रवित तटों के पकिल रज-वण में दुखिया अटकेंगे
 यदि तड़पे ये वदी तो भी चरणा में जाएगा,
 वहीं रहगें मेंडरात ये वहीं गति पाएंगे ।
 जी के कठिन प्रश्न का उत्तर यही मिल जाएगा,
 मन की मछली निडर प्रेम या सौगन्ध निपटाएगा ।

जिसके एक एक पद संचालन से कंपत प्राण
 जिसके नह-पगे अवलोकन से डुरता है प्राण,
 प्राण प्राण के मिस होता है जहाँ नेह का दान
 नेह दान के मिस जा करती है मुझ-से अियमाण ।
 उसका कुछ परिचय द दो, वह निष्ठुर प्रतिमा कौन ।
 मन की मछली क्या साथे बठी हो तुम यह मीन ?
 गहराई के अतन्तल में कौन छिपी बठी है ?
 मछली मछली जरा बता दा कौन हूँ पठी है ?

अगरत, १९२५

— 'नातुरी' से

मृदग चम

आकुलता आकुलता हो पूछती, आह ! मुझ
 अब वह जान दो आसुआ क मग-मग ?
 नजबती तव कर पल्लव परम हीन
 वाद्य का गुजार-स्वर हा गया पिता त भङ्ग

नटरानी, वन म मतिवा क भाजन म
 रति गति भर प्राण गुण को चना दा तग
 मौन भग होव उठे तरल तरङ्ग घोर
 गूज सुमृदङ्ग वहे तोचना म अथ रग

मौन कह सवता है मरी यह जीवन की
 रवतवणा गगन विहारिणी लचीली चम
 सरी नवहोरी की सुपाग म वधगी ? घोर
 कोमल करा म आन मिहरगी अग अग ?

अगुलि स आखा से हृदय-स्पन्दन से मत्त
 वृद्धित करो री उडन दो कागजी पतग
 एक लपभय म एक भटवे म (न दखो)
 उमड पडा है इस जीवन कथा का अग ।

मनोरथ

अलमस्त हुई मन भूम उठा चिड़िया चहकी दरियाँ दरियाँ
 चुन ला सुकुमार बली बिलरी मृदु गूथ उठी लरियाँ दरिया
 किसकी प्रतिमा हिय म रविब नव आति कहे धरियाँ धरियाँ
 किस ग्रीव म डार य डालू मखी, घँमुआन ढँ भरिया भरिया

सुकुमार पधार खिलो दुक् तो इस दीन गरीबिन क अगना
 हँस दो, कस दो रस की रसरी एनका दा अजी कर क कॅगना
 तुम भूल गय कल स हलकी चुनरा गहर रग म रँगना
 कर म कर याम लिय चन दा रँग म रँग क अपन सँग—ना ?

निज ग्रीव म माल सा डान तनिक वृत्तवृत्त्य करी सिधिला बहियाँ
 हिय म चमके मृट लोवन व कुठ दूर हट दुख की बहिया
 इस सास का फाँस निकान मखे बरसा दो सरस रस का पुहियाँ
 हरग हिय गस रम जियरा, खिल जायँ मनारथ की जुहियाँ ।

१५ दिसम्बर, १९३०

—‘इम विषयायी जनम क’ म

मदिर हिलोर

अरी मानस की मदिर हिलार ।
मत वह मत उठ मत नहरा तू
तरा ओर न छोर ।

गुपचुप मधुप पान कर आया
रस सूँ दो चार
थब न उमड तू मम नीरवता म
मत भर ख रार ।
अरी मानस का मदिर हिलोर

पहरान राहरान की है
नही आना आज
यो ही आहो क मिस
छलका द वेदना थयोर
अरी मानस की मदिर हिलोर ।।

प्यार कहानी हिय अरुभानी
छानी रखियो खूब
बहुत बार धोपा द दती है
लोचन की कोर ।
अरी मानस की मदिर हिलोर ।।

१३ अक्टूबर, १९२१

—'रगिण रेखा' से

साकी

साकी मन धन गन फिर आये उमड़ी श्याम मेघ माना
अब कसा बिलम्ब तू भो भर भर ला गहरी गुल्लाला ।

तन व राम राम पुलकित हा लाचन दोनो अरण चकित हा
नसनम नत्र भवार कर उठे हृदय विकम्पित हो हूलसित हो
कब म तल्प रहे है खाली पडा हमारा यह प्याला ।
अब कसा विनम्ब साकी भर भर ला तू अपनी हाला ।

और और मत पूछ दिये जा मुहमति वरदान लिये जा
तू वम शतना ही कह साकी 'और पिय जा और पिय जा ।'
हम अलमस्त दग्ने आये हैं तेरी यह मधुशाला
अब कसा विनम्ब साकी भर भर ला तमपता हाला ।

चडे विनट हम पीन वात्रे तरे गृह आये मतवाले
रसमे क्या मकीच लाज क्या, भरभर ला प्याले पर प्याले
हमस बह्य प्यासा स पड गया आज तेरा पाला
अब कसा बिलम्ब साकी भर भर ला तू अपनी हाला ।

हो जान द एक नगे म, मत आन द एक नगे म
मान ध्या पूजा पोयी व फट जान द एक नगे म
एसा पिना वि विन्व हा उठे एक बार तो मतवाला
साकी अब कसा विनम्ब, भर भर ला तमपता हाला ।

तू फला दे भादक परिमल जग म उठे मदिर रग छन-छल
 अतल वितल चल अचल जगत म मदिरा भलक उठे भल भल भल
 कल कल छल छल करती हिय तल म उमडे मदिरा वाला ।
 अब कंसा विलम्ब साकी भरभर ला तू अपनी हाला ।

कूज दा कूज म बुभन वाली मरी प्याम नही
 बार बार 'ला ला कहन का समय नही अयास नही
 अर बहा द अविरल धारा बूट-बूट का कौन सहारा
 मन र जाय, जिया उतराव डूब जग सारा का सारा
 ऐसी गहरी ऐसी लहराती ढनवा द गुल्लाला
 साकी अब बसा विलम्ब टरका द तमयता हाला ।

१६३१

—'रिमि रेता' म

नारी

मृष्टि मथन की पुरानी तुम पहली गूड
 गहन मन्त्रमन्थि तुम, तुम जानगति दिङ्मूढ
 तुम भ्रमित अनि शक्ति विचलित चकित भाव-समूह
 मुनक फिर-फिर उलझनी तुम प्रश्न-वृत्ति दुःह
 तुम पिपामाकुन जगत की प्यास आगा नारि
 एक घूट अपूण तुम मृगवृष्णिका सुकुमारि ।

तुम मृजन-मथन-जनित विगलित विमन नवनीत
 चलित प्रजनन चक्र की तुम स्निग्ध बूद अतीत
 तुम जगत नीरस मरुस्थल क बरसन मेह
 तुम तडित विद्युच्छटा, तुम सरमना क गह
 तुम विराग विकार म अनुरागिनी मनुहार
 रार तुम अविचार तुम तुम प्यार अत्याचार ।

तुम ममस्या अटपटी तुम चिर रहस्य महान
 तुम दरस का चटपटा उत्कठिता अतमान
 निपट आत्मिचौनिया की तुम भनक अम्लान
 विगत युग-युग की चिन्तन तुम कमक मुमकान
 हृदय-मथनवारिणा तुम माहमय उमान
 कल्पना की कोकिला तुम फिर भाव प्रमान ।

तूब बन आयी सलोनी तुम ठसक ठकुरास
 मत्त गज-गति म छिपा आलस्य का आभास
 बिहस डाला है जगत क ग्रीव म गुण बध
 नयन-कलिका म भरी है अमित मानक गध
 आ जगत की स्वामिनी मायाविनी, तुम बध
 तुम प्रकृति क मुहुट का प्रतिरिम्ब रूप अनय ।

३६३

—'इन विषयादी नम क म

रुन-भुन-भुन

रुनभुन रुनभुन रुनुनभुनुन भुन रुनुनभुनुन भुन रुनुनभुनुन ।
 मर लावन की पाजनिया भुनुन रही मरी आगनियाँ
 औचक आकर धीर धीरे मुन से तू मरी माजनियाँ
 ना जानू कम पाया है यह घन अरी पडौमिन मुन ।

पानिया की खन-खन स तन मन म उठनी भवतियाँ
 टगा टगी-सी रह जाती हैं खन-खन चरण अलकृतियाँ
 लला उठ उठ कर गिरता है धूल भरा हँसता फिरता है
 लावन की म अमियरता म थिरक रहा जगकी स्थिरता है
 आज विद्व की गणना मम आगिन आरें वन निरगुन ।

कितका मरा ताल कि मर मन म हुआ उजला-मा
 राया रच कि विद्व हा उठा मर निग अकला-सा
 आंगु-कण बरमा आना तार-तार टपकान आना
 मर घर आगत म आता रदन-हाग वा मरा खजाना
 मर स्मरण गान म गूज रही है हनकी टुन टुन-टुन ।

आज बिन्व गणव अपनी गानो म खिता रही है मैं
 मुविगत, वनमान भावी वा मधुरम पिता रही हैं मैं
 गन गत सस्कारा की धारा मर स्तन न वही अपारा
 वनवर पयस्विनी करती है मैं भविष्य निमाण दुवारा
 मर गिणु म प्रगती मानवता की खिर पुरानन पुन ।

कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?

कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?

चलित चरणा की जगह अब कब मिलेंगे ध्रुव चरण वे ?

इधर दया उधर भाँका
मिल गए कुछ चपल-लोचन
मे समझ बटा कि मुझका
मिल गए सकट विमोचन
विस्तु करता हूँ विगत का
आज जब सिंहावनोकन
दखता हूँ तब अनस्थिर भावना के आचरण ये ?

प्राण के उच्छ्वास में मैं
सीधे लाया गूल कितने
और हर निश्चय में
उड़ उड़ गए हैं फूल कितने
दान के स्मृति रूप कटक
मिल गए हैं आज इतने
सुमन पुजा के हुए हैं गूल ही नव सस्करण ये ।

नभ विस्फारित किये
जन थल असीमाकाश में नित
फिर रहा हूँ खाजता कुछ
अनवरत व्याकुल प्रवर्चित

भाव रसा पर दुर्द है
 चिर विषयना छाप अकित
 विवक अवपण-मुरति का कत्र करेग पिये वरण ये ?

दीप-लघु में तव अन्व-कर म
 ममय-नद म प्रवाहित
 नित्य प्रति प्रनिबूलता के
 प्रवन भावा म प्रनाहित
 टिमटिमाना वह रहा हूँ
 में जनम का ही निराधित
 दीप-सम्पु कव वेंधेगी कर अंगुलियाँ मन हरण व ?

कौन जान यह विवम्पित दीप
 तुमन कत्र वहाया
 क्या पना तुमने हम
 फिर कव बुझाया, कव जनाया
 है पता इतना कि हमन
 आज तव आश्रय न पाया
 है वहाय जा रह हमका प्रवाणी उपकरण ये ।

केंव रही है ज्याति अब ता
 तुम हम कर दो अनिङ्गन
 नव निवात न्यान म अब
 ली नग दसकी अगङ्गित
 मजन ज्यातिमय करा
 निज पुज म हमकी मुमचित
 घाम दा अब ना तनिव इसर अवग मे सतरण ये ।

मई, १९३६

—'स्वामि' से

साजन लेंगे जोग, री

आज सुना है सखी हमारे साजन लेंगे जोग, री
 हम दान म द जाएंगे व विकराल वियोग री ।
 इस चौमास क सावन म घन बरसें दिन रात री
 एसी ऋतु म भी क्या हाती वही जोग की बात री
 घन धारा म टिक पागगी कस भ्रम भभूत री
 फन जाएगी इक छिन भर म यह विराग का छूत, री
 अभी सुना है मजन गए वस्त्र रगगे आज री
 घोर छाड देंगे वे अपनी रानी अपना राज री
 हिय मथन गीला रति म भी यदि न विराग विचार री
 ता फिर बाह्य आवरण भर म है क्या कुछ भी सार री ?
 प्रेम निःस्य स्यास नही तो अथ योग है राग री
 सखा कहो त रह सजन क्या यथ अल्पटा जाग री
 हमन उनके अथ रग लिया निज मन गरिक रग री
 और उन्हीके अथ सुगन्धित किये सभी भ्रम भ्रंग री
 सजन लगन म हृदय हो चुका मूर्तिमत स्यास री
 अथ जोगी बन छोड़ेंगे क्या व यह हिय आवास री
 सजनि रच कह दा उनस है यह धतुका विचार री
 उनक रमते जोगीपन म होगा जीवन भार रा
 चौमासे म अनिकतन भी करत कुटी प्रवण रा
 उनको क्या सूभी कि फिरेंगे व सब दंग विष्णु री
 उनका अभिनव योग बनगा इस जीवन का मोग री
 सखी नैन कैसे देखेंगे उनका वह सत्र जोग री

२८ जुलाई, १९३६

बयालीसवें वष के अन्त पर

पूछा सध्या न आन कब हम गान मनायें या कि हय
 तुम आज कर रह हो पूरे चालीस और दो अधिन वष
 यह बयालीसवा वष आज अस्तगत रवि के साथ चला
 बाती, किन भावा का लेकर आयगा कल उषा चपला
 जीवन क इतन वष बन घुघली स्मृतिया के पुञ रूप
 ह कवि, क्या दग्गा है तुमन नम कुछ अपापन अपूप ?

मैन देखा है माय क्षितिज मैन देखा है अपन को
 एतन बमर पूर करत देखा जीवन क मपन का
 हो चला बानिमा स मणित सध्या नम जा या गान गान
 पर दिट मदन पर दिग्गा पूण निगिपति हसता उन्नत विशान
 मैन सध्या म कहा कवि मेर जाउन की घूप-छाई—
 है हय गाक म पर आज ह वटुन दूर मरा निगाह ।

ओ बयातीमत्रे बत्तर को मरा उल्लुक कुटपुटी मांभ
 है स्नाय आज इस जीवत की मादक गभीर मृदग भाभ
 गाय हैं मी कई गीत रोत राय हैं क-बई
 हर सुवह और हर काम उठी है जो म टीमें नई-नई
 क्या दबू में पीछे मुक्कर जीवन का उत्तर विगद क्षेत्र
 ह सौंभ आज आग का हैं मरय उल्लुक युगल नत्र ।

मरा अनीत है महाराज्य दुवन मानव श्रीटाया का
 मरा अनीत है एक पुन मन की गहरी पीटाया का
 हैं रह स्वप्न मर सगी, सगिनिया रती निरागाएँ
 जीवन-नद म जन बुबु-मी बन विगली मम अभिलापाएँ
 पर सध्य, आज निगीत्रिय श्री निहै भाव की चाह जरी
 बुल-बुल रम्य उपाटन की हिय म यह नूतन लगन लग ।

यह जो कहलाता है असीम क्या है सचमुच सीमान हीन जिसको विमुक्त कहते हैं वह क्या है वास्तव म निज अवीन यह जो अनन्त अम्बर है वह क्या है इतिगूय अगोप लीन अधर क्या सचमुच ही न कभी हाता है किञ्चिन्मात्र क्षीण जग रहा आज य युग युग की प्रनावलिया अलसायी सी नडपन जसी यह जिनासा उठ रही आज बल लायी सी ।

मर जीवन की सध्या बी भ्रुटपुट अधियारी उमड रनी मर नयना म भो तो यह अब ज्योतिक्षीणता घुमड रही तन म थकान अनुभूत हुई मन म गैथिल्याभाम हुआ ऐसी घडिया म दस गादवत जिनासा का सुविवास हुआ परद के पीछे क्या है यह उस समय दरने की सूभी जब खत्म हो खली है मरी हस्ती की गारीरिक् पूजी ।

चेतना लता म लय भव के क्या मुमन फूलते रहते हैं क्या जन्म मरण क भूले म ये प्राण भूलते रहते है ये पूण पुरातन प्रश्न चिह्न ये चिर जाग्रत य चिर नवीन मर मानसपट पर उभर फिर म ये पूण रहस्य लीन इन प्रश्ना की उत्सुकता का मैं आज बना हू पूज रूप उत्तर धार मे दे ता दो, तुम ओ मेरी सध्य अनूप ।

इच्छा ला है मैं खाल सकू यह भीत भयानक मृत्युद्वार च्छा यह है मैं भवि सकू इस घनावरण के आर पार उड चल आज मम राजहस सीमान गगन का पक्ष चीर अम्बर काप कुछ मेद खुले कुछ दलक उठे नभ गग तीर अनुमान पान की नही आज प्रत्यक्ष पान का प्यास मुझे देखू किसक्षण इम जीवन म वह नीर पान कर स्वय बुझे ?

२६ दिसम्बर, १९६६

—'इम विषयायी वनम क से

डोले वालो

डोना तिय चलो तुम भटपट छोडो अटपट चाल र
सजन भवन पहुँचा दो हमका मन का हाल बिहाल, रे ।

बरसा रितु म मय सहलिया मक् पहुँची आय र
वायुल घर म आज चली हम पिय घर लाज बिहाय, र
उनके दिन बरसाती रातें कस कटें अचूक, रे
पिय की बाट उसीस न हो ता मिटे न मन की हूक र
डाले वानो बड चनो तुम आया सध्या काल र ।

डनी रुपहरी किरनें तिरछी हूइ साभ नजदीक र
अभी दूर तक ीय पडे है पय की लम्बी लीक, र
आज साभ क पटले ही तुम पहुँचा दो पिय गह रे
हम कट आर्ट है दूर मे रात पडेगा मेह रे
घन गरजेग रस बरनगा होगी मृष्टि निहाल रे
डोला तिय चला तुम जल्नी छापो अटपट चाल, र ।

वायुन क घर नह भरा है पर है दूत विचार र
माजन क नथ नह गलिल मे है अद्वत विहार, र
हृदय दृश्य म प्राण प्राण म आज मिनें भरपूर रे
पिय मय तिय तिय मय पिय जब हा तब हा सभ्रम दूर रे
दूर बग पय क अतर का यह अटपट जजाल, र
डोले वानो बट चला तुम आया सध्या काल र ।

२८ जून, १९३६

बातकृष्ण गर्मा नवान

आज रोम-रन्ध्रों से

आज रोम रन्ध्रों से फिर गूजे नवस्वर प्रिय
कूक उठी हिय मुरली फिर से स्वर भर भर प्रिय ।

सिहर उठा यह धूमिल धूमिल-सा शीघ्र गगन
ऋभा के भूले में झूल लहर उठा व्यजन
धुमड़े दल के दल ये मध भरे बादल गन
अम्बर का वक्षस्थल घहर उठा घर घर प्रिय ।

बूढ़े टप टपिर टपिर टपका दल-बादल से
धाराए धिर घहरी नभ के वक्षस्थल से
मिहर उठा मलयानिन हम सिहर बेकल से
बाँपा मन उमड़ा हिय नयन भर भर प्रिय ।

यल जल-मय आप्लावित बल्लोलित हुआ त्वरित
हुए चपल सजल तरंग अगणित ये स्रोत सरित
जल-बुदबुद बन बिगड़े हृदय हुआ नेह भरित
यास आस प्राणा की बाल उठी सर-सर प्रिय ।

पुलकित हा भूम उठे बट पीपल नीम आम
कुहू-कुहू कुहू उठी बोलिया पूणकाम
हम अपूण पूणित मन मौन रह हृदय याम
डोल रहे आम तल हम आह भर भर प्रिय ।

अब न मथो यह जीवन

बस-बस अब न मथा यह जीवन
इन इन्द्रिय मयन ढों का और न अधिक करो उत्पीडन ।

ज्या-ज्या मथा गया जीवन रम-त्या-त्या और-जार से उफना ।
म-यन क-दायें-दायें इन-गन्नाटो म-उलभा लघु-मन
सोचा था यह सतत मयन गति-गायद-कर-द-जीवन-सम-रम
पर-प्रति-गति-न-अन्त-स्तल-को-किया-और-भी-भन-भन-उ-मन ।

सच कहता हूँ कि आ गया हूँ आजिज इम-निहग-हार्थी-म-
लौटा-दा-मुभको-मरा-वह-छोटा-मा-अकु-ग-मद-मजन
मदा-मत्त-मान-ग-शृंग-पर-मुभ-चन्नाया-खाली-हाया
अत्र-ताला-द-क्या-विम्बरात-हा-निज-अट्टहास-मुक्ता-वन ?

प्रिय-भरी-वदना-व्यथा-को-अर-तनिक-तो-तुम-अब-लोका-
यह-पाग-न-पन, यह-जीवन-न-यह-घन-घनाटाप-यह-गजन ।
क्या-द्विज-म-मिद्वान-भ्रा-त-है-क्या-यह-कारा-भ्रम-ही-भ्रम
यदि-सच-है-तो-मम-द्विज-म-का-घटा-न-बज-घन-घन-घन ।

मुभ-बहुन-हा-भन-भानी-ह-मदत-निर्धारित-पग-डडी-
अत्र-ता-अभिन-मधिग-मत-हान-दो-ह-मेर-मानी-मन-घन
इन-इन्द्रिय-मयन-ढडा-का-और-न-अधिक-करो-उत्पीडन
बस-बस-अब-न-मथा-यह-जीवन ।

श्रोत बिन्दु सम ढरके

हम तो श्रात बिन्दु सम ढरके

आये इस जडता म चेतन तरल रूप कुछ धर के ।

क्या जान किसन मनमानी कर हमका घरमाया
क्या जान क्या हमका इस भव मर घल म सरसाया
दांध हम जडता बंधन म किमन या तरसाया
कीन गिलाडी हमका सीमा बंधन न हरपाया
किसका था श्रांत कि उतर हम नभ म भर भर के ?

आन वाप्य बन उड जान की साथ हिय उठ आई
मन पछी न पस तोलन की रट आज लमाई
क्या हम श्रनाहृत न श्रामश्रण की अनि सुन पाई
अथवा आज प्रयाण बाल की नव गम अनि छाड
रागना है माना जाये हैं स्मरण आज अमर के ।

५ जुलाई, १९४७

— स्वामि' ने

नश याम कल्पमान

निशि का अतिक्षुद्र याम आज हुआ कल्पमान
अस्थिर चल चपल निमिष आन हुआ युग-ममान
नग याम कल्पमान ।

अस्थिर म हाता है जब गावर्ग समादाग
म-मय हो जात हैं जब अनित्य काल-दाग
तब हात हैं विसुप्त अचिर चलन-कलन-कनेग
मुन्दर गिव सन अकाल रहता है एक गप
पाता है परिवर्तन तब चिरता का प्रमाण
चपल निमिष युग ममान ।

निशि क चंचल क्षण को दन तुम स्थिर स्वरूप
छिटकात स्मित किरणें हस्त धन-स्तम कुहूप
भरे हुए पूर्णपिण निज नयना म अनूप
आय साकार बन मरे तुम चिर अरूप
उस क्षण अकित हाता क्या न अमरता विधान
नग याम कल्पमान ।

एक निमिष-सम्पुट म भरकर आन त्य प्रहर
 नयना से बौतुक कर मुमकाय तुम प्रियवर ।
 मृणमय यह कालखण्ड जिसको चन मण कहकर
 हृमन हैं जग-जन-गण वहा दृष्या अजर अमर ।
 खूब दिया तुमन इन धर को अमरत्व दान ।
 नश याम कल्पमान ।

श्रवणा म नयना म प्राण-ध्यजन म मन म
 अकित है अमर आप राम राम वण-वण म
 गूना अनहद निना तव कका मनमन म
 व्याम-गान-गान उटी मर प्रिय तव स्वन म
 आय त्रिकान तुम्ह वदन वरन मुजान ।
 आ मर अचिर प्राण ।

—'स्वाति' स

विप्रयोग शीत भार

ठिठुरे है हाथ पाँव सब गरीर कम्पमान
रोम रोम कटकसम ठिठुर गय विरल प्राण ।

शिलीभूत पिडबद्ध धमनीगत रुधिर वार
धनीभूत श्वास-पवन जडीभूत हिय विचार
ध्रुव तो है असहनीय विप्रयोग शीत भार
मदरिमत किरणो स विठेंस करे प्राण दान ।

मरे प्रिय मन्दादर शीत श्वास पवन दूत
मत भेजा इस दिशि तुम मैं हूँ अति पराभूत
बरसाओ तुम न उपल अन्वेषा घन प्रसूत
धरधरधरकापरहा रहसिहृदय मन भ्रजान ।

काँव काँव टुइय टुइय बोल रहे काक कीर
च चुक चुक करती यह कापी खग वृद भार
शीत बाण बरसाता गृहा सनन सन समीर
पीर भरे अन्तर म ठिठुर गये सरस गान ।

घन गत यह पीप-तरणि क्षीण तज, मानो मृत
निस्प्रभ सा काप रहा मन्मद धूमावृत
ऋतु ऋतुवर सुकृतकिरण धाज हुई विकृत अनत
एक क्षण विह्वल रखा तिनकर का गलितमान ।

वासुदेव शर्मा नवीन

हवा हहर श्रमणो म कहती यह शीतवात,
तेरे प्रिय विमुक्त हुए अब तेरी क्या बिसात
सकल मनारथ तेरे सपने हैं मनसि जात
सच है क्या यह सब कुठबोलो तो मुरस खान !
ठिठुरे हैं विकल प्राण ।

—‘ग़रिब रेखा’ से

३१ दिसम्बर, १९४२

हम अनिकेतन

हम अनिकेतन हम अनिकेतन
हम तो रमन राम हमारा क्या घर, क्या दर कसा बतन ?

अब तक तनी योही काटी अब क्या सीखें नव परिपाटी
बोन बनाय आज धरोदा हाथो चुन चुन ककड माटी
टाट फकीराना है अपना बाघाम्बर सोहे अपन तन ।

दख महल भापडे दखे दखे हास विलास भजे क
सग्रह क सब विग्रह दखे जेच नही कुछ अपन लेखे
नालच लगा कभी परहिय म मच न सका गोणित उडेलन ।

हम जा भटक अब तक दर दर अब क्या खाक बनायेंगे घर
हमने दखा सदन बने हैं लोगो का अपनापन सेवर
हम क्या सने इट गार म हम क्या बन व्यथ म वमन ?

ठहर अगर किसी दर पर कुछ शरमाकर कुछ सकुचाकर
ता दरवान कह उठा बाबा आग जा लखो कोई घर
हम रमता बनकर बिचरे पर हम भिक्षु ममके जग के जन !
हम अनिकेतन ।

१ अप्रैल, १९६०

— 'रिम-रेसा' मे

बालकृष्ण 'गमा नवीन'

एक बिन्दु

एक बिन्दु इदु मथित सिधु लहर टाड चली
लघु ससाम औ असाम बाच लगी हाड नली ।

निज विराट रूप त्याग बिन्दु हुइ तत्रगा
अपरिमेय अमित मापराशि हुई अचगो—
अगमा गतिगम्य हुई अनिलानल रग रंगी
नानाविध रूप धरे विचर रही गली-गली
बिन्दु सिधु छाड चली ।

हर हर कहत गतियुन द्रुत मारत रयाएइ
अम्बर म विचरण को हिय म नर ध्यया गूढ
सन दिक्क-काल चाह निकली यह बिन्दु मूढ
निज असाम अगम गहन गृह म मुह मोड चली
बिन्दु सिधु छाड चली ।

क्षण म यह बापन बनी अण म वह प्राप्त बिन्दु
क्षण म धन-वारि उपल फिर चातर तोष बिन्दु
बिन्दु आत्मतुष्टि कहाँ यदि न प्राप्य गहर सिधु
तमयतापूय बिलग रहनि इम आज खली ।
बिन्दु सिधु छोड चली ।

अम्बर का भ्रमण किया वटों भ्रूगभ बीच
 सरसाया नव जीवन पादप-नृण सीध-भीच
 देखा चिरकाल कलन अवलोका ऊँच नीच
 वितु न क्षण भर को भी गृह की मुधि रच टनी ।
 विदु सिधु छोड चली ।

ओ गभीर स्नह सिधु ओ सुदूर इदु पूण
 इक वीरी विदी का हुआ सफल दप चूण
 विलग रूप अव असह्य असहनीय चक्र पूण
 घहर उठा सम्मुख अव वीत चुकी गुगावनी ।
 विदु सिधु छोड चली ।

सदा चाँदनी

कुछ धूमिल सी कुछ उज्ज्वल सी भिलमिल शिशिर चाँदनी छाई
मर वारा क आँगन म उमड पडा यह अमल जुहाई ।

अरे आज चाँदी बरसा है मरे इस मून आँगन म
जिसम चमक आ गई है इन मरे भ्रूनुटित कण-कण म
उठ आई है एक पुलक मृदु मुभ वदो क भी तन-मन मे
भावो की स्वप्निल पुहिया म मरी भी कल्पना नहाई,

मैं हूँ धूल सात ताला म किन्तु मुक्त है चंद्र गगन म
मुक्ति वह रही है क्षण-क्षण इस मल प्रवाहित शिशिर व्यजन म
और वहाँ कब मानी मैं ब धन-सीमा अपन मन म ।
जग-जन गण का मुक्ति मन्मा न आई चन्द्रिका-जुहाई ।

मैं निज वान काठरी म हूँ ओ चाँदनी खिला है बाहर
डगर अरोरा फल गहा है फला उबर प्रकाश अमाहर
क्या मानू कि ध्वात अविजित है जय है विस्तृत गगन उजागर
ना मरे खपरलो म भी एव किरण हमतो छन आई ।

मास चप की गिनती क्या हो वहाँ जहाँ म व तर जूँके
युग परिवर्तन करन वाल जीवन वर्षों को क्या बूँके
हम विद्राही वहा हम क्या अपन मग क कटक सूँके
हमको चनना है हमको क्या हा अधियारा या कि जुहाई ।
कुछ धूमिल सी कुछ उज्ज्वल भी हिय म सदा चाँदनी छाई ।

८ परबरा, १९४८

—'रश्मि रंगा' न

भावी की चिन्ताएँ

भावी की चिन्ताएँ सम्मुख अब आई हैं
विषम समस्याओं को घेर घेर लाई हैं।

प्रश्ना की उलभी सी मालाएँ गले डाल
धन न मुठमाली सा धाया है विकट काल
सवनाश का श्मशान जाग उठा है बराल
अट्टहास करती सब जोगनिर्मा धाई है।
विकट समस्याएँ धन धिर धिर ये आई हैं।।

मानव की छाती पर चिह्नित हैं अरुण चिह्न
मानव की वाणी का अथ भेद भिन्न भिन्न
मानव का जीवन है अथु स्वद रक्त किलन
मानव न ही अपनी गाँठ उलभाइ है।
भावी की चिन्ताएँ सम्मुख अब आई हैं।।

आज बना है मानव तिरवनम्य अनिवेतन
आज निराश्रित-से है सब जग जन गण क मन
विजय-मत्त जडता है पराभूत है चेतन
परवशता की मानव दुग म परछाइ है।
विषम समस्याएँ ये धिर धिर कर आई हैं।।

उलभा है ब्यक्तिक सामाजिक तारतम्य
भावी क्षण रहे नही कल्पना विचार-गम्य
हिय म कस आय कोई मनुहार रम्य
आज अनिश्चितताए सभी घोर छाई हैं।
भावी की चिन्ताएँ सम्मुख अब आई हैं।।

१६ जूल, १९४४

—'स्वासि' मे

उड्डीयमान

निगि क दश दिशि पथ म फलाय पग जाल
गति पावर आज हुआ यह अडज भी अकाल ।

पछी उड्डीयमान त्वि सभ्रम हृत्य जान
विकल प्राण डूँ रहा निज चिर अश्वत्थ डाल ।

अम्बर क बीच चली शाश्वत की टाह भली
अन्तहीन वस पथ म साठ ने किया कमान ।

दूर दग दूर नगर अदभुत अनात डगर
कितु प्राण पछी की अथकित अजरुद्ध चाल ।

गूय त्रिगा पवन गात नभ-पथ दुगम नितान्त
कौन प्रेरणा अगम्य प्राण को रही उडाल ।

श्वास क्षुब्ध चक्षु रुद्ध किन्तु लगी लगन शुद्ध
उनो की सन सन म जागरूकता विशाल ।

उडना है उडना है पीतम दिशि मुडगा है
योग नहीं कवन हा पिय-पत्न म प्रणत भाल ।
कना है पल जाल ।।

मधुमय स्वप्न रंगीले

बन बनकर मिट गये अनरा मर मधुमय स्वप्न रंगील
भर भरकर फिर फिर मृत ह मरे लाचन गील गीले ।

मरा क्या कोण, क्या मरा चंचल तूनी क्या मरे रंग
क्या मरी कल्पना हसिनी मरी क्या रन रामरति उमंग
मैं करुका रग रूप चिन्ता मैं क्या बिचर सका रग-कुल मंग
मन-स्वप्ना क चित्र मय हा बन स्वप्न ना मिट हठील
भर भरकर फिर फिर मृत ह मर रग-पात्र रगील ।

जनावार कव का र्म प्रियतम कय मैंन तूलिका चनाई
मैंने कव यत्नत जना क मन्त्रि म वतिका जनाई
या नी कनी काप उट्टी है मरी अंगुना घोर कलाई
या ही अभी हूण है कुट कुठ रममय कुछ पाहन अरमाते ।
बन-बनकर मिट गये अनरा मर मधुमय स्वप्न रगील ।

मैंने कय मजावता फूँगी जग क वठिल गल पाहन म
मैं कर पाया प्राणस्फुरण कय अपन अभिव्यजन वाहन म
मुझे कव मिल मुत्तर मुक्ता नावाणव क अवगाहन म
यग-रग है मिल मुझे ता तुम जम कुछ अतिथि नजाल ।
या ही बन बनकर मिट हैं मरे मधुमय स्वप्न रगील ।

मरे स्वप्न विलीन हुए हैं किंतु शप है परछाई सा
 मिटने को तो मिटे किंतु व छोड़ गये है इक भाइ सी
 उस झिलमिल की स्मृति रेखा भ हैं व झालें झकुलाई सी
 उसी रेख स बन उठत हैं फिर फिर नवल चित्र चमकील
 बन बनकर मिट गये अनका मरे सपने गीले गीले ।

३ मई, १९४८

—'क्यानि' म

अरुणा सुकुमारी

रुन कून गुन गुन रुन कून गुन गुन अमरी पाँजनिया गुजारी
तन मन प्राण श्रवण ध्वनि नादित आई यह अरुणा सुकुमारी ।

वन वन म कम्पन निरुपदन नर नर विचरा सनन नमीरण
वग अरुलिया क अंतर स गूजे नव-नव स्वागत क स्वन
सिहर उठे जग क रज कण रण पुनकित प्राग, लिल उठा चतन
जगत लिल मानो अरुणा न अपनी अग्नियाँ सजल उधारी
वजी भूग पाँजनियाँ आई ठुमुन ठुमुक अरुणा सुकुमारी ।

किरण माजनी ल मृदुना न दूर विया वह दुःख तम पन
अरुण अरण निज कोमल-वर स चमकाया अम्बर का आँगन
सुप्त हो चल ग्रह तारक गण, दिहेंमी सकल दिगाएँ मुद मन
अम्बर स अरुनी तक लहरी अरुणा की सतरगा सारी
गगन घटा से हेंस मुसकाती उतरी नव बाला सुकुमारी ।

हमी मदिनी हम शल गण तर लतिकाए हसा अकारण
कलियाँ हेंसी पण-लरु हुलस गान कर उठे सत्र द्विज चारण
गूजा मप्र-छद उच्चारण पूण हुआ तम मौन निवारण
अनहद नाद मगन नन मडल नाद मगन सब गगन विहारी
तन मन श्रवण निनादित करता आई यह अरुणा सुकुमारी ।

३० नव-नर, १९४३

—'रश्मि रम्या' मे

एक नीम

खड़ा हुआ है एक नाम यह किसी निगाह नीम के घर माना कोई अनपेक्षित जगता सिद्ध पड़ा है जिना सहाय ध्यान मग सा अमल न मा वीतराग यह बल्कनधारी कितनी ही दुःख रत्न क्याग दय बुका है धारा धारी खड़ा हुआ है उन तापम मा जिमकी सन्तत चित्तन उवाया— माना दमी नवल मत्सा अभिनव उपाति उमान वारा।

अगणित व्यवा दत्ताया के मन यहाँ बिय है अगणित धार विभाजा हसन कृपको के दृग जल का उपण हसा सुषड किमान-बधूटा दखी बिथटा म गरमान इमने नय अम्पति अबलोक कचन महुधा पर रह जाते इसन दम न ह बच्चे नित विललाते सूक्ष पक्ष इसन दल मभी ग्रामजन जीव-मृत में नग भूष ।

जिम घर के दरवाजा तरे है वह घर अब मुनसान हुआ है सौय सौय कगता है मानो वह एकांत इमगान हुआ है हस घर नामक खडहर म जो कृपिजीवी दम्पति रहते थे जो कु समाग यवस्था का अति अनाधार निगिदिन सहत थे व ही अब दुर्भिक्ष प्रताडित जजर रहे भूष के मार चल गय है वही । नीम का छोटे अकला अदन द्वारे ।।

रायी घर की टूटी भीनें बूटा नाम फूटकर रोया
 अम्बर न भी बिन ब बिलखकर मा धरती का चीर भिगोया
 राजपुत्र मिट्टाच चला या निजगृह त्याग अमरता पान
 और उसीक देश निवाना चल खाजन दान दान ।
 कौन पा सका परम अमर-पद या बिन मुट्ठी भर दानो क ?
 कम पाये जन अचनापन जबकि पढ लान प्राणा क ?

दगादिया का वृद्ध नीम यह अमित व्यथिन ३ अंतरतर म
 कहा छिपाय रह कर तलक अमित व्यथा निज अभ्यन्तर म ?
 हहर-हहर कर तटप रही है इस पात्प की पत्ती-पत्ती
 माना सचिन दुव की बातें कह डानगी रत्ती रत्ती ।
 यह पुराण मा गी जड-पादप कुठ कहन या है आतुर सा
 यह मीनी भी आज बन रहा नव सत्प-बहन चातुर सा ।

म पहुचा भुटपुट समय उस गवाका तरवर व नीच
 श्री कुछ क्षण को मैं अचन भारी भारी नावन नीच
 नीम उमी क्षण नुभन वाना— आ गतिमय दा परा वान
 मुभ निगति मुभ प्रचल विवग का राकर कुछ ताव्ययापेटाल ।
 तू अब तक दखता रहगा नित्य उजड़न या घर क घर ?
 कर तर तात्प नत्य ररगी यह विभीषिका स अरता पर ?

वान द्विप व मर माधी व इस टूट पर क वासी
 विप्र गण व जिनक गिन यह कुटी हो रही राज रानी ?
 वरसा क मर सहनामो मुभ कर गय आज अना
 कहा टपन वह जा बचपन म मरी छाया न था बना
 कहा गया वह कृपा-वधू जा नित, बरती की हमी टटा नी
 मावन नादी म ररती की जो हैम मरी पकी निनीली ?

ओ तू शिक्षित मनुज बना तो कब भडबगा तब त्राघानल ?
 बोल, अरे सुस्थिर कब हागी तरी चित्त वत्ति दोलाचल ?
 भवति न भवति कुण्काया म तू कब तक या पडा रहेगा ?
 उकट-थाठ मारा-सा तू या पय म कब तक खडा रहेगा ?
 मैं अग भी प्रदला करता हूँ विषट बाल-परिवनन क सग
 ओजगम तू क्या न लखगा बदले हुए जमाने का रग ?

कनी-कभी मरी डाला पर दूर दग के पछी आकर
 उन दशा क जन परिवतन गायन गात मुझे सुनाकर ।
 मिहर उठा करता हूँ मैं व बातें मुन निज अतरतर म
 और निरख अपने मानव का रोया करता हूँ निगि भर मैं ।
 क्या वत् बल बहु अतुल पराक्रम मम मानव म नही जगगा ?
 अरे बाल विप्लव क रस म कब तक मरा मनुज पगगा ?

कब तक तिरसू निज मानव क जीवन की बदना व्यथा यह ?
 कब तक गरमाऊ मैं सुन सुन अय जना की नीति क्या वह ?
 तू कब तक सीपेगा करना प्रलयकर हुकार भयकर ?
 कब प्रारम्भ करेगा मग मग तू मिरजन महार भयकर ?
 बोल अर ओ प्रतिनिधिमानव तू शिक्षित ससृष्ट विज्ञानी ।
 तुने समय वयार दिगा गति क्या अय तक न अरे पहचानी ?

मन उस क्षण सुनी नीम का यह कटु सत्य व्यथा की बाणा
 और छलछला उठा उष्ण सा मरे मीनित दृग म पानी ।
 किन्तु विद्या अनुभव कि हृदय म सुलगी है विप्लव चिनगारी
 मैंने दखा कि उठ रहे हैं निद्रा स मरे नर नारी ।
 मैंने दगा दूर क्षितिज म विहँस रहे है मर मपन ।।
 मैं बाला— आनिम्य विलख मत आत हैं अब शुभ दिन अपन ।

प्राप्तव्य

इस धरती पर लाना है
हम लोच कर स्वर्ग
कहीं यदि उसका ठौर ठिकाना है !

यदि वह स्वर्ग कल्पना ही हो
यदि वह गुड जल्पना ही हो
तब भी हम भूमि माता को
अनुपम स्वर्ग बनाना है !
जा देवोपम है उसको ही इस धरती पर लाना है !

घोर स्वर्ग तो नाग लोक है
तदुपरान्त बस राग शोक है
हम भूमि को योग लोक का
नव अपवर्ग बनाना है !
जोकि दबदुलभ है उसको इस धरती पर लाना है !

बनना है हमको निज स्वामी
ऊर्ध्व वृत्ति सन चित् अनुगामी
बमुधा मुधा सिंचिता करक
हम धमर फल गाना है
जोकि दबदुलभ है उसका हम धरती पर लाना है !

है आनन्द-जात जन निश्चय
सदानन्द मही उनका लय
चिर आनन्द बारि धाराए
हम यही बरसाना है
जो दबोपम है उसको ही इस धरती पर लाना है !

६ जून, १९५३

—बिनाया लखन ग

तुम युग-परिवर्तक कालेश्वर

तुम युग परिवर्तक कालेश्वर, तुम त्रिकपति, तुम चिर अजर अमर
 नर जीवा चक्र-प्रवर्तक तुम तुम गति दाता तुम ज्यातिप्वर
 तुम सभय त्रिभय त्रिमय तुम मृषमय तुम वर द आ अनाम /
 तुम अत रत तुम उपवास निष्ठ तुम नित अमग तुम यन धाम
 तुम कम निरत रवि तारक सम तुमन न रच जाना विराम
 तुम महानिष्क्रमण शण म भी बरकर बाल । ह राम, राम ।

थ मृत्यु ध्यान फन घारापित कानी-मदन तव युगल चरण,
 तव यन अताशन-अध हस्त थ उठे ग्रहण कर जन-वदन,
 तव नयना म धा छलक रही गगा-यमुना जन रजन की
 नर मुग्धमण्डन पर आभा थी त मय मन मध्या-व दन की
 उस मया का वास्तव म क्या कर गया जाल तुमको कवलित ?
 तुम वर वसान प्रवाह विवग ? तुम ध्रुव कूटस्थ अटिग अचनित ।

तव रक्त दान म कही दुष्प्रा प्यासी दानवता का तपण ?
 चिर प्रम प्रतिष्ठा कही दुइ ? हा गया यन्पि तव प्राणापण
 तुमन मूठी अपनी घाँसे तिमिरानून दुष्प्रा हमारा मग
 निज प्राण द चल तुम ता, पर निष्प्राण हा गया है यह जा
 थ एक सुम्ही ता यही जो कि उत्प्राणित करत थ वण कण
 तव बल पर ही ता गति युत थ हम एम माटी व भाजन ।

चिर प्रेम प्रतिष्ठा कहा हुई ? परितृप्त हुई कब दानवता ?
 कब बुझी आग यह हिंसा की ? उ मुक्त हुई कब मानवता ?
 मानव जो रँग रहा है या वह ऊँचग्रीव कब हुआ अहो ?
 सतिष्ठा की अगुलिया न मानव हिय को कब छुआ अहो ?
 तो क्या समझे कि हुआ निष्कृत बलिदान तुम्हारा यह पावन ?
 तब जावन का उत्सव कहे, क्या नहीं, हो सका जन भाव ?

है प्रश्न यही सम्मुख कि द्विप मानव क्या है ? उसकी गति क्या ?
 है कबल राग पुज पशु दर ? उसकी है अयोगमन रति क्या ?
 यदि यही सत्य है तो फिर तुम क्या मानव यानि धरे आए ?
 यह द्विप अगोति न तो तुम ऊपर का कस धाए ?
 वापू यह बुद्धि भ्रमित सी है वापू जन मन उलभन म है
 मानव क्या तुम हा ओ वापू या मानव हम एम जन है ?

तुम प्राण चटाकर चल और हम मानव द्वेप राग रत है
 तुम निज क्षणित न चल और हम तो ज्यो क त्यो अवगत है
 यह हिंसा घृणा स्वाधरता यह दस्यु वृत्ति यह कायरता
 आकांत किये ह हम और, है जन प्रवृत्ति दुर्भाव रता
 नश्वर मानव तन धर कर तुम इतने ऊँचे क्या हुए सत ?
 वामन जन मन कल्पना पुण्य तव चरण-स्मृति किमि छुए सत ?

कितन कितना बलिदान किये मानव की पशाचिन्ता न ।
 पर रच प्रभावित किया नहीं, जन क मन को भास्विकता न
 तुम ओ ईसा सुकरात सभी कर गए प्राण उत्सव यहा
 पर जन बोना ही रहा और उतरा न भूमि पर स्वग यहाँ
 हिय गीच क्या न उन्नाति उठे मानव की यह गति विधि लखकर
 नर है धानक नारायण का या सोच क्यों न हिय आए नर ?

जिस ठोर पड़े तव चरण वही वह भूमि तीथ बन गई सही,
 पर धिक् हमका हम बना रहे अपवित्र वही तव पुण्य मही
 क्या यही सत्य है कि तव पुण्य, बलिदान व्यथ हो गया यहा ?
 तव प्राण अपहरण का याही क्या यह अनर्थ हो गया यहा ?
 यो शकातुर हो उठत है हम निपट अल्प विश्वासी जन
 यो भ्राति भरित हा जात है हम ऐस जन के नघु-लघु मन ।

—'आजकल' से

अक्टूबर, १९५५

अदृष्ट चरण वन्दना

वन्दन कर लू आज तुम्हारे अडिग अकपित उन चरणों में
जिनकी महिमा रही अगीता जन साहित्यिक अधिचरणा में ।

तुम अज्ञात नाम जन भवक तुम सनिक तुम धीर धारकर
तुमने नव सत्ता ध्येय का श्रमता दिखलाई साहस कर
चरण तुम्हारे चल अशक्ति अति सत्वर अनजान पथ पर
मानव - प्रगति हुई प्रतिलक्षित तब चरणा के आचरणा में ।

चरण तुम्हारे व कि जिज्ञान दुग्ध गल किय अतिलक्षित
जिनकी निभय अच्युतता में किय अनन हृदय निस्पलित
जा नवीन निर्दिष्ट भाग पर मुदित वच चल निपट अशक्ति
व इत चरण उग्र गये हैं जा गहज विस्मरण आवरणा में ।

य तव गतना चरण कर गये अभिनव जन यात्रा पथ निर्मित
तुम व सनिक जा अज्ञात पर समुद्र कर गये प्राण समर्पित
आज तुम्हारे तप प्रसाद से है भारत जन गण हिय हृषित
तव शोणित कण अथ पुष्पित है नवयत्ना के अवतरणों में
वन्दन कर लू आज तुम्हारे अडिग अकपित उन चरणा में ।

दुराध

बुद्ध रहस्य है एसा
जिम तुम्हारे विश्वासो जन भी
तुम्हारा नहीं बताते
तो तुम्हको क्या हा दमम अचरज ?

सब जन अपनी खिचटा
पका रह हैं अपने चूल्हे पर
तुम्हें क्या पडी है जो
रखा जान पत्र हैं कि कच्च ?

भाग्य भराहा अपने
कि तुम रग जाते हा दूर सदा
विपद क्या माल लोग
गुप्त मन्त्रणा एर यन्त्रणा है ।

अपनी अपनी दुपला
अपना अपना राग गीत अपना
नियम न हा यह दूषित
यदि न यने जन क्षत्र स्वाथ-केंद्रित ।

स्वयं बजान स ढप
टीक ताल गति सीखेगा मानव
क्या गति होगी उसकी
तुम्ही बजाते रह ढोल ढप जा ?

और बिना आलाप
अपना राग सिद्ध स्वर कस हा
गाओ तुम जो चाहो
पर अथा क कठ न सुधरग !

अच्छा है ये तुम
निज सबधित बात नहीं कहत
करा प्रगसा उनकी
कि है आत्मविश्वास उह इतना !

हा पर एक खटक है
कि जब गोपनीयता रह इतनी
तो क्या सग चलने म
क्या कोई गुचि रचि रह जाती है ?

२२ जून, १९५५

— हम विपरीत जनम क' से

दोहे

बिचरेहु पिय की डगरिया बमहु पिया क गाँव
पिय की डवीश बठिक रटहु पिया की नाव ।

रात अरेर पास की, दीपक हान बुटार
आय सजाबहु दीपरा हियरा नयो अमीर ।

फूँची यह जावन विटप, परयो आदि अभिगाप
सन्तापी हिय करि रह्या नीरब मोन बिलाप ।

विहसो भूला भूल प्रिय मम रसान की डाल
कूँची काकिल सी तनिक गूँज सब दिक्-काल ।

काऊ कौं ह निमिषवत अन्तहीन यह काल
काऊ कौं छिन हूँ सगत ब्रह्म दिवस विवहार ।

हसा उडे अकाम म तऊ न छूटयो ब्रह्म
मन अरुआयो ही रह्यो मानसरावर-फद ।

हम विराग आकास म बहुत उडे दिन रन
प मन पिय-पग राग म लिपटि रह्यो बचन ।

सरद जुहाई अर कहा कहीं प्रमत उठाह
जीवन म अर प्रचि रह्यो चिर निनाथ री गह ।

नह त्रियो निष्टा महिन पायी घणा अपार
नवा की मवा मिल्यो यह दृतघ्न व्यवहार ।

हम विपपायी जाम क महै अत्राल कुबोल
मानत न नकुा धनख हम जानत घपनो माल ।

पछा बालत च चटक सलिल करत कननाद
मव जग वनिमय ह्व रह्यो हम मौन उमात् ।

व्यथ मय निष्पन्न गये जाग साधना रत्न
कीन समटे मूरि जव मन म पिय मो रत्न ।

कह बूनी की राख यह कह पिय चरण पराग
कहा वापुरी विरति यह कहा स्नह रस राग ?

अरुणा भइ विभावरी द्रुहत पिय की गाव
कित पिया की डगरिया कित पिया की ठाव ?

है या जग की मृत्तिका कछुक मदीम मतान
जाम मिलि ह्व जात है चतन चेतन हीन ।

मस्मृति वनी अनूप बम रह्यो तुम हृदय मे
कछु छाया कछ धूप सरभावहु मन गगन विध ।

बीत चली वासन्ती बेला

[कवि की प्रतिम कविता]

बीत चली वासन्ती बेला जीवन की
धूमिल हो चली ललित स्मृति कल्पित फूलों की,
विह्वला होगा उद्यान की मन आँगन में—
शब तो है स्मृति कवन जावन की भूला की।

है कुछ-कुछ स्मरण कि प्राचीन था जीवन रवि,
वह चमक रहा था पूव क्षितिज में तजवान,
पर जो अब आकाशमुख हानर के दना—
ता देखा प्रायः पूण हुआ है त्रिस-यान।

सुन उस प्रान्त में मुक्त पल्लियाँ का गायन,
सोचा था, जीवन होगा मगत गायनमय,
पर, अत्र जब आ पहुँची श्वामा सध्या बला—
तो देखा इसे कण्ठ में निकली एक न तय।

अनमित्र प्रमाधना युवन, दिग प्रमित्र १५ -
वट गए यम निदम आमन २० ३५ ४५
श्वामें न सधी आसन न जमा, धा १ १ १५
अस्तित्व रहा शिश्वास १५ १ १ १

क्या मिला ? नहीं कुछ भी तो मिला यहाँ मुझको,
जीवन यह एक मिला था वह भी खा बटे ।
बया हो विचित्र लीला है किसी खिलाडी की
हम एक भले थे किंतु व्यथ दो हा बटे ।

पर, बहन, एक तुम हो कि नहीं भूली उसको
जो है नित भूला हुआ स्वयम् अपने को भी
कर देती हो तुम निज राखी के धागा से
चिर मूर्तिमान उसक अमृत सपने को भी ।

यह विमल तुम्हारी राखी का सुकुमार सूत्र
वाराणस में कुटिया में वा निजन वन में
सब ठौर पहुँचता है दबी वरदान रूप
भर देता है कपन यह रज के कण-कण में ।

बर्षा लोके

कौन बात ऐसी है मरी जा तुमसे हो छिपी, सलान ?
तुम तो नाँव चुक हा मर अतस्तल क कान-कान ।

जब कि नाल अम्वर म श्यामल घन का चदुघ्रा तन जाता है,
उपवन जब सिहर उटता है, बन कम्पनमय बन जाता है
उन घडिया म तुम जाना हा, क्या-क्या मर मन नाता है
खूब जानत हा, उम क्षण में क्या लगता हूँ कुछ-कुछ रान,
कौन बात ऐसा है मरी जो तुमसे हो छिपी, सलान ?

य घन-गन जो इधर पधारे, आज उधर भी आए हगि
जा मर बाराणुह छाए य वी नी ता छाव हाग,
जो लाय रोमाच इधर व पुनक उधर नी लाय हगि,
तुम नी बीजाग इनसे जो घाण हैं या मुझे बिगान,
मूरख मय, तुम्हार बिन ही, आय या मन्िनी सँजान ।

तुम्ह याद है घन-गजन-क्षण नित नूतन परिरम्भण-मय है
य अटपट हवा क नाक बन स्मरण अवलम्बनमय है
पर य मर निय यहाँ तो आज बन गय अन्दनमय है
य सख, मजधर कर आय है अपन ही म मुँह डुबान,
घोर काटन दोड रह हैं य थारा क कान कान ।

तुम्हें याद है वह दिन, प्रियतम जब मदभरी घटा आई थी?
 वह दिन जब नभ के अंगिन में धन रस रास छटा छाई थी ?
 उस दिन तुमने भी तो हस हस नवरस फुहियाँ बरसाई थीं !
 जिनसे अत्र तक हैं मधु भीन मेरे हिय के कौन-कोने
 कौन बात ऐसी है मरी जो तुमसे हो छिपी मलों ?

उस दिन हम तुम दोनों बड़े दख रहे थे बादल के दल
 उस दिन सिहर रहे थे पल पल प्रिय, हम दोनों के अतस्तल
 आज वही मघा आय है नर लाए हैं मगन लगन जल
 दबो तो प्रिय छलक उठे है मेरे लाघन किसनय सलों
 कौन बात ऐसी है मरी जो नमसे हो लिपा सना

एक बंदी के लिये कहा तो क्या बरमान गई या आई ?
 मरी क्या आर्द्रा चिन्ता यह ? प्रिय मरी क्या गरद जुहाई ?
 क्या हम तो गिरा नृत्य मरी ? मरी कौन बस तो निनाई !
 खोकर भव नृत्य नान चला हूँ मैं तो आज स्वयं का खान !
 ये खाली-खाली हम भीन मेरे हिय के कौन-कोने ।

फागुन में सावन

इस फागुन में भी धिर घ्राए, काले धील मघ गगन में
मानो अमित उपन वरसान घ्राय य पर घ्रागन में

लहर रहा है मन्माली-सी यह फाल्गुना बघार रमीली
कर मधुपान हुई है माना निपट बाबरी और नगीली
हृत् हृत्कर छाड़ रहा है मंदिर द्वास निज सीली साला
ना जान कितना मद है इस उच्छ्वल जमुक्त व्यजन में ?
इस फागुन में भी धिर घ्राए काल धील मघ गगन में

ग्राम नाम, जामुन पापल की गाखें नून रहा हैं नूना,
माना फागुन में ही आया वह सावन पथ भूला भूला !
घ्राई यथा यथा गिरि में पावस में किंगुक बन फूना ! !
आज प्रकृति वरिन न यह ऋतु रार मघाई मेरे मन में
इस फागुन में ही धिर घ्राए काले धील मघ गगन में !

मरसजन सलो तुम बिन मुझको फागुन ही दूसर था
कम यह हानी बीनगी, मुझका तो इसका ही डर जा
सावन, फागुन अलग अलग भी मेरे लिय निपट दुस्तर था
थव ता हाली और थावणी घ्राइ सग भग इस निजन में !
कम कर पाऊगा प्रियतम, यह ज्यातिप घ्रायाय सहन में

जब फुहिया-सुइयाँ चुभती हैं, उठते हैं जब घन क्षण क्षण म
सन-सन सन सन सनन सनकती पवन लिपटती है जब तन म
तब, प्रियतम, तब परिरभण की उत्कण्ठा उटती है मन मे,
क्या बतलाऊ क्या जादू है असमय के भी इन घन गन म ।
बना चुके हैं मन मन उ-मन फागुन क ये मेघ गगन म ।

स्मरण गगन म चमक रहे हैं वे तब युग लोचन रस पात
जब कि वनखियो स मुभको तुम निरस रहे थे आते जाते
दृग स दृग जब मिल जात थ तब तुम ये कुछ-कुछ मुसकात,
ग्राह ! कहीं व नयन तुम्हारे ! और कहा मैं इस बदन म ।
क्या न आग लग जाए अब इन निरगुन फागुन के घन गन म,

१० फरवरी, १९६४

—'रश्मि रेखा' से

हिडोला

घाघो, बलिहारी जाऊँ तुम भूलो घाज हिडाले
 मैं भोटे दू, तुम चढ जाघो भूले प घनबोले।

मरी घमराइ म भूला पटा रसीला बाल,
 चवर डुलात है रसाल क रसिक पण हरियाल,
 रस-लोनी अलिगण मडरात है बाले भौराले,
 मूना भूना देख उभर घात है हिय म छाले,

घाघो पग बढाघो भूना की तुम होले होले,
 सजनि, निछावर हो जाऊँ तुम भूना घाज हिडोले।
 बोली सहज लाज-मोहकता निज नयना म घाले
 घाकर मुहरा दो मरे हिय के सुकुमार पफाले,

घान कपा दो इस भूले की रसिक रज्जु की फाँसी
 मरी उत्पण्टा को, सुन्दरि डालो गलबहियाँ सी,
 क्वासि ? क्वासि ? प्यासी घाँसा स वरस रहा
 फुहियाँ-सी

घा जाघो मर उपवन म सजनि, घूप ठहियाँ-सी

कुङ्कु-भुङ्कु भूम भूम, खिल जाघो हृदय प्रियियाँ खाले
 घाघो बलिहारी जाऊँ तुम भूलो घाज हिडाल।

—'रसिन-रेखा' स

१३ दिसम्बर, १९३०

बालकृष्ण शर्मा नवीन'

क्यो उलभे मन

निरख निरख कर चहुँ दिशि तम घन क्यो लरज हिय ? क्यो उलभे मन ?
लख नभ घागन गहन तमोमय क्षण क्षण क्या अकुलाए लोचन ?

ये कज्जल क कोट भयानक उ० हुए है भू स नभ तक ,
दुनिवार यह घोर अघ तम धिरा रहेगा बोला कब तक ?
क्या अकुलाते हो मन मरे ? देखो बाट प्रभा की अपलक !
हिय म भर उसास आशा की गाग्रा भरव क मगल स्वन !
निरख गहन घन तिमिर आवरण क्षण क्षण क्यो अकुलाए लोचन ?

आज ध्वात भानात मेदिनी आज दिशा दुर्दात तमोमय !
आज तिमिर क यदल के दल पूण कर चुक ज्योति पराजय !
पर क्या तुमन नही सुनी है ज्यातिभय शख ध्वनि जय जय !
सखो ! दूर वह विभा आ रही श्यामा क तम पट स घन घन !
लख लख वतमान यह तम घन क्यो लरज जिय ? क्यो उलभे मन !

दूर नही हे अरे निकट ही वह प्रकाशमय मगलभय क्षण
और सदा ही तो हाता है अरणा और समिस्ता का रण !
जा डूबे हैं आज तिमिर म हुलसेग वे ही रज कण-कण
य भूवर यह भू, यह अम्बर सब फिर पायग अपनापन
निरख निरख कर चहुँ दिशि तम घन, क्या लरज हिय ! क्यो उलभे मन ?

भूल गए क्या प्रथम प्रात का वह उल्लाम लास ? वह बभव ?
 वह अलिंगन की गुन गुन-गुन गुन ? व प्रफुल्लित, विकसित करव ।।
 तुम भूले क्या मुदित प्रभाती गायनरत द्विज दल का कलरव ?
 याद करो प्रथमा उपा । क अनिलाञ्चल की रसमय सिहरन ।।
 स्मरण करो निज विस्मरणा का, करो आज गहर अवगाहन ।।।

फिर आएगी उपा हंसती, फिर होगा बिहान चिर सुंदर,
 फिर स नव भरवी छिडेगी, फिर होगी पखा की फर फर,
 फिर स अरुण घटा छाएगी, फिर होगा द्रुमदन का ममर
 फिर से समुद बहगा सन सन सनन सनन जागरण समीरण
 लख अम्बर म तनावरण घन, क्षण षण कयो अकुलाए लोचन ।

२१ ११ ४३

—'रश्मि रेखा' से

दान का प्रतिदान क्या, प्रिय ?

दान का प्रतिदान क्या प्रिय ?

वय को जब दे चुका तब प्रतिग्रहण का मान क्या प्रिय ?

दान का प्रतिदान क्या प्रिय ?

नह के वस हाट म मैं न जाना भाव क्या है ?

भाव-तावो म पड जो यह सुरति का चाव क्या है ?

दाव पर जब प्राण हैं तब नेप भी कुछ दाव क्या है ?

जब कि दे डाला सभी कुछ प्राप्ति का फिर ध्यान क्या प्रिय ?

मैं न मागूंगा कि मुझको निठुर तुम निज नेह द दो

मैं न मागूंगा कि मम मरु प्राण को कुछ मह द दो

मैं सतत अनिकंत क्या मांगू कि तुम इक गेह दे दो ?

तब अपक्षा के गरल का कर न लूंगा पान क्या प्रिय ?

तुम न मरे हा सको तब भी मुझे क्या शोच, प्रियतम ?

स्फटिक हीरक म कहो कब आ रही है लोच प्रियतम ?

तुम निभाओ निज निठुरता नित्य निमकोच प्रियतम,

या निभाऊ मैं न अपनी नित समपण आन क्या प्रिय ?

ये लखो, आकाश मे चमके नखत अनगिनत साजन

यह लखो मम नयन म चमका लगन अति विनत साजन

शौर सिञ्जन कर उठी तब गमन उत्सुक-चरण पाँजन ।

तुम न रुककर मुन सकोगे गमन क कुछ गान क्या प्रिय ?

दान का प्रतिदान क्या प्रिय ?

मिक्षा

भर दो, प्रिय भर दो अन्तरतर

विश्व वेदना व कन जल स आप्लावित कर दो अम्यतर ,
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर ।

छलवा दो मरी वाणी म अचर-सचर की विगलित करणा ,
समवेदना भावना मे तुम कम्पित कर दो यह हिय थर थर
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर ।

नभ जल थल स अनिल अनल म करण मोहिनी छवि दिखला दो
पुलक पुलक वह शाने दो प्रिय, भरे नयना वा लघु निःकर ,
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर ।

दठलात कुसुमो का मादक परिमल मन नभ म फला है ,
धपनी निगुण गन्ध किरण स चिर निधूम करो मम अम्बर
भर दो, प्रिय, भर दो अन्तरतर ।

मरी मुग्धा व्यथा परिधिगन हुई—उस नि सीम वना दा ,
मुक्त करो, प्रिय, मुक्त करो मम करुणा-वीणा के ये सुस्वर
भर दो, प्रिय भर दो अन्तरतर ।

१४ ११ ३१

—'क्वासि' से

तुम सत-चित्त श्रवतार, रे

हमर बलम की काउ न जगदयो कोउ जनि गाइयो मलार रे
 वगनन की खन खन जनि करियो ना पायल भनकार रे।

हम अनगिनत बलया ल क आई है पौवाय र
 तनक खनक सौ मजन जग हैं हैं सुकुमार सुभाय रे
 सोए है पिय गहन तिमिर की बारी चादर छाड, र,
 रगमहल क दीप बुझे है बलम रह हैं पीठ र
 काउ न फकियो न हसी की मृदु बिरणें दू चार रे
 हमरे पिया की कोउ न जगदयो कोउ जनि गाइयो मलार र।

चल जागृति तू दुबकि बटिजा जहाँ द्रुमन की नीर र
 अरी, खेल क य क्षण नाही छायो तिमिर गम्भीर र
 कुजन कुजन रौस रौस प अर तू नकु न डान र
 मरे साजन क य मीलित लोचन पुट जनि खाल र
 हमरे रगमहन मे छाइ है बिधार्ति अपार र
 हमरे बलम की कोउ न जगदयो जनि काउ गाइयो मलार र।

राग भरी बारी कोयलिया तू नया बूका आय रे ?
 कस क सोहि मक कर हम याकी कीन उपाय र
 तू जागृति की दूती बनि क आई है उद्यान र
 अरी बलमुहा अभी तिगा है अवाहि न भयो विहान रे

बच्ची नींद अरुहि पो है हमर प्राणावार र,
तू क्या उह जगावन आई ? तू क्या उठी पुकार रे ?

हम चाहत है नीरवता प प्रकृति बढी है ढीठ रे
कोयल और पपीहा क मिस पठवत रहत बमीठ रे
आज बढी है हाड प्रकृति न हमरे सग करि डाह रे ।
प हम जीतेंगी निहचें ही पिय व हाय निबाह रे ।
तुम मति जगियो बानम जागी सावहु पाव पसार रे
गणिका प्रकृति कहा करि लगी ? तुम सत चित अवतार रे ।।।

— क्वासि' से

१६ निसम्बर, १९५३

मैं तो सजन, आ ही रही थी

क्या बजाई बांसुरी ? मैं तो सजन आ ही रही थी
अधुत जमा की तृपा भर नयन म ला ही रही थी ।

क्या बताऊँ कब सुन थे तब सुरति ब्राह्मण क स्वन ?
युग अनेका हो चुक है जब सुना था वह निमंत्रण ।
किन्तु भ्रुकृत हैं अभी तक उन स्वरो से प्राण तन मन,
नवल स्वर गर क्यो पुरानी कसक अस्थायी नहीं थी ।।

सजन मैं आ ही रही थी ।

क्या बहूँ है पथ कसा क्या दसा है चरण तल की ?
क्या कहानी मैं सुनाऊँ आज निज मात्रा विकल की ?
स्वद भलवा भाल पर, पद तल शोणित वार भलकी
किन्तु मैं तब निठुरता पर सतत मुसका ही रही थी

सजन मैं आ ही रही थी ।

क्या कहूँ कब श्याम घन बन तुम धिरोग मम गगन म ?
क्या बताऊँ मधु पवन बन कब लगेगे तप्त तन म ?
कुछ कहा तो शरद शानि बन कब खिलोग शूय मन म ?
क्यो बजाई वरगु ? मैं य प्रश्न मुलभा ही रही थी

सजन मैं आ ही रही थी ।

मत वजाओ वेशु, या दिक्-काल पट आवरण म दुर,
 सुन तुम्हार मुरलिका-स्वर सिहरत हैं प्राण धातुर,
 मुरझ जाता है, सजन, या हृदय का निष्काम अकुर,
 स्वर प्रणोदन क्यों ? जब कि मैं माग पर जा ही रही थी
 सजन, म आ ही रही थी ।

उतर आए भूमि पर सब भाव मरे गगन चारी
 आज थल चर हा गए हैं मम मनोरथ नभ विहारी,
 रज-वणा म ही तुम्ह नित खाजती हूँ मैं विचारी,
 सद्ब्रिया मैं, अगुणता स नित्य उक्ता ही रही थी
 सजन, मैं आ ही रही थी ।

याद है मैंने तुम्हारे हैं कभी पद-पद्म चूम,
 तब कमल मुख पर कभी है मत्त मम दृग मृङ्ग भ्रूमे
 पूण अगीकार म था लुप्त द्विविधा रूप-तू-मैं ।
 विलग होकर भी मिलन क गीत मैं गा ही रही थी,
 सजन, मैं आ ही रही थी ।

५ अगस्त, १९४४

—'स्वाप्ति' से

दूबर-सा कटता है तुम बिन जीवन, प्रियतम

दूबर सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम
चलता ही जाता है काल चक्र अति निमग्न ।

कटत है निपट विषय य मूने जीवन क्षण
करत ही रहत है हम सदा त्वदीय स्मरण
किन्तु न निर्वेद मिला आकुल है यह जीवन
एक टीस हिय म उठ आती ही है थम थम
दूबर सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम ।

प्रवण काल वाली म जीवत क्षण मुक्ता सम—
दुष्क जाते है नित दख रह हम अक्षय
पर उन मुक्ताओ म अथित स्मरण सूत्र परम
जिसक बल भावी का होता गन म सगम
यो स्मर अवलम्बन ल काट रह जीवन हम ।

प्राणाविक कत्र तक हट पाया अंतर पट ?
पिर कर तुम आद्योगे सम्मुख आ जीवन नट ?
मेरा ह मटा यह विवट यवनिका सवट ।
तुम बिन जीवन लीला आज हुई पूण विषम
दूबर सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम ।

इतने दिन बीत गए फिर भी स्मृति प्यारी सी —
आ जाती है सम्मुख सि धु स्नात स्वारी-मी —
टपकाती कसा म जल बूने खारी सी ।
नही जान पाए हूँ हम यह सब भद भरम ।
दूबर-सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम ।

वह मजुन मुख, व प्रति करुण डहडह लोचन —
 वह तव मुसकान मधुर, वह तव स्वप्निल चितवन,—
 परम सुषस्वृत मनोत्र व मयत स्नह-वचन,—
 इन सज्जी मधु-स्मृतियाँ मयती है अंतरतम
 दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन, प्रियतम ।

अतस्तल गूय आज आज जगत मूना [है
 आ प्राणा क पाहुन तुम बिन सब ऊना है
 जीवन म यव नाव उमडा तिन दूना है
 हाती हा रहती है हिय म खुट खुट हराम,
 दूभर सा कटता है तुम बिन जावन, प्रियतम ।

प्राण, खीभ आती थी कभी कभ। जो तुम पर
 उसकी स्मृति अत्र वया करती है हिय दिन भर,
 क्षमा करा आ विनुषत चिरउत्तर हृयस्वर
 हम न तुम्ह जान सक जब तुम थ परप मुगम,
 अब तो तुम बिन यो-स्या काट रह जीवन हम ।

स्मरणा की मात्रा म फूत गूल दोना है,
 हिय म निभ्राप्ति घोर अकथ भूल तोना है
 जीवन-वन म गनन थी बगूल, दोना है
 तव स्मृति नी है थी है यह मम दुर्भाग्य अगम,
 दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन प्रियतम ।

आज हमार भुज य है तव परिरम्भ गूय
 आज नटवन है हम जग म अवनम्य गूय
 विगलित हम आज सजन, हटा गान-दम्भ गूय,
 रो रोकर किमी तरह चलता है जीवन अम
 यो-यो ही नटना है तुम बिन जीवन प्रियतम ।

प्राणो के पाहुन

प्राणों के पाहुन आए धौ' चल गए इक क्षण म,
हम उनकी परछाई ही से दले गए इक क्षण मे।

कुछ गीला सा कुछ सीला सा अतिथि भवन जजर सा
भ्रांगन म पतभर क सूखे पत्तो का ममर-सा
आतियेय के रुद्ध कण्ठ म स्वागत का घघर-सा
यह स्थिति लखकर अकुलाहट हो क्या न अतिथि के मन म ?
प्राणो के पाहुन आए धौ' लौट चल इक क्षण म।

शून्य अतिथिगाला यह हमन रच-बच बयो न बनाई ?
जग का अपनी गिल्प चातुरी हमने बयो न जनाई ?
उनके चरणागमन स्मरण म हमने उमर गवाई,
अध्य दान कर कीच मघा दी हमने अतिथि सदन म,
प्राणो के पाहुन आए धौ' लौट पडे इक क्षण म।

व यदि रच पूछते बयो है अतिथि वक्ष यह सीला ?
व यदि तनिक पूछते बयो है स्फुरित वक्ष यह गीला ?
तो हो जाता पात उह है यह उनकी ही लीला,
है पकिलता आज हमारी माटी क कण-कण म,
प्राणा के पाहुन आए धौ' लौट चल इक क्षण म।

अतिथि निहारें आज हमारी रीती पतझड़-वेला,
 आज दृगो म निपट दुर्दिना का है जमघट-मत्ता,
 भडी और पतझड़ य ताडित जीवन निपट प्रवेला
 हम खोए स खडे हुए है एकाकी आँगन मे
 प्राणा क पाहुन आए थी चले गए इक क्षण मे ।

१ मई, १९४८

—'स्वास्' म

फागुन

घर ओ निरगुन फागुन मास ।
 मर कारागह क गय धरि म मत कर वास
 घर ओ निरगुन फागुन मास ।

यहाँ राग रस रग कहा है ?
 भाँस न मरि मृदग यहा है
 घरे चतुर्दिक फल रही यह
 मौन भावना जहाँ तहाँ है ।
 इस बुद्धि म मत धा तू रस वस ठसता सोल्लास
 घरे ओ भोले फागुन मास ।

बोटू म जीवन क वण कण
 तल तल हा जाते क्षण क्षण ।
 प्रतिदिन चक्की क धमट म—
 पिस जाता गायन का निवचण
 फाग सुहाग भरी होनी का यहा कहाँ रस रास ?
 घर धा मुखरित फागुन मास ।

गमवाँस की बटिन गास म
 मूज बान की प्रखर फाँस म

अटकी हैं जीवन की घड़ियाँ
 यहाँ परिश्रम-रुद्ध साँस म।
 यहाँ न फला तूवट अपना लाल गुलान विलास
 अर अम्णार फागुन मास ।

छाइ जजोरा की भन मन ,
 डडा - वेडी की यह घन घन
 गरे का अर्राटा फला
 यहा कहीं पनघट की खन खन ?
 कस तुम्हको यहा मिलेगा हाली का आभास
 अरे हुरिधारे फागुन मास ।

यह निबध भावना ही की,
 चपल तरगे अपनी जी की
 इन ताला जंगलो क भीतर—
 घुट घुट मतत हो गई फीकी
 अब नू क्या भदमाता ताडव करता र सायाम ?
 अर मतमान फागुन मास ।

२६ परवरी, १९३१

—'न्यासि' से

प्राणार्पण'

है यह गाया उस घबसर की जब मत्त हो उठे व जन गण
जब हाम । टन गया था सहसा भाई भाई म भीषण रण
जब लाप हुमा था करणा का हिंसा की विजली कडकी थी
जब नाच उठी थी निदयता जब आग भयानक भन्की थी
जब लिए पत्नीता दौड थ जन आग लगाने घर घर म
नव की है यह मरी गाथा जब प्रलय सा हुआ प्रम्बर म ।

जो आज दिखाई देता है नोला सा सामाजिक प्राणी
जो सदा हिचकता रहता है जो कभी न करता मनमानी
वह पागल सा हाकर कस बन जाता है शानित पायी
क्याकर तना उच्च खल-मा हो जाता वह उत्तरदायी ?
उसकी करुणा उसकी ममता कसे विलुप्त हो जाती है ?
उसकी वह अपनी मानवता क्याकर सहसा खो जाती है ?
अपन अभिशप्त दृगा न है ऐसी मैन व घटनाए
दखी हैं वन आँखा न व अति धार गक्षसी रचनाए,
व घटनाए मज्जा नयपथ, व घटनाए गीणित मज्जित
जिनका टुक स्मरण मात्र करके मनु सतति होवगी लजित ।
मैं नी हूँ आखिर एक अग तस गरलमयी मानवता का
हू किसी रूप म मैं नी तो कुछ दायी तस दानवता का ।

१ श्री गणेशशकर विद्यार्थी की दुःख मृत्यु से सम्बंधित खण्ड काव्य
'प्राणार्पण' का एक अंश ।

मजदूर लिय अपना नम्बर पीतल का या कि छप टिन का,
 बेभरम सड़क पर जाता है, वह भूखा है सार दिन का,
 पत्नी-बच्चा से मिलन के मन में लड़झु खाता जाता,
 कर याद ज़िगर के टुकड़ा का, मन ही मन है वह मुस्काता,
 वतन ही में अनजान में है छुरी चमकती कातिल की,
 एक आह निकलती है शीं वस, घड़कन ख जाती है दिल की

दशा है एक दृश्य जिसकी स्मृति कर दती है हिय व्याकुल,
 मन में विपाद छा जाता है मर मर जाती है ग्लानि विपुल
 देने दशा जो घुसत ही सुनसान एक घर में अन्दर
 बीभत्स लय, कर याद जिन धव भी कैप जाता अंतरतर,
 या खून लवालव भरा हुआ काना, गड्ढा में उस घर में
 शीं लम्बे नम्बे बाल पड़े थे जिसे मुकेशी के सर में।

व बेग रक्त में लयपथ से दीवारों की गणित रजित,
 कोइ मोना भी उस घर का था नहीं दुष्ट-कृति से वनित
 थी पडा रक्त में सनी हुई टितरी त्रितरी चूटिया वहाँ
 गला पाली थी वहिन कहीं? चूड़ी वाली माँ गयी जहाँ।
 आगन में एक लुआ भी था उनमें दुप ध नमकती थी।
 जो दानवता का घृणित क्या कहत न तनिक भी थकती था।

रह गया धन महत्व दाना? क्या दीन यही? इमान यही?
 कहनाता है क्या धम नाव मानवता का अपमान यहाँ?
 साधारणत हिमक पंगु भी निज सजातीय को रक्षक है
 एक हम मानव हैं जा कि हाथ, वनत अपन ही भाव हैं।
 सा भी स्वधम की छाया में, ल नाम मजहवा ईमाँ का,
 हम गला काटने चलत है इस्वर के धर ईसाँ का।

दुःमन कोइ न किमी का है, परिषय भी नहीं किसी दिन का
 ऐसों-ऐसों का हनत है सवध रहा न कभी जिनका,

दाली या चुटिया, या घोती या पजामा अथवा तहमत
 यवाह्य चिह्न ही है यथष्ट जन क हान को हत, ग्राह्य ,
 कितनी विकरानी दानवता नर का कितना बटोर बतन ।
 कितना राक्षसी क्रूर, निदय वर्मा व भाव का यह नतन ।
 इतना गान इतना तजन इतना घषण इतना घषण
 इतना मदन इतना मदन इतना प्रथपतन का आकषण
 य घृणित धम क घटाटाप य घृणित दान की आकृतिया,
 ये सब मिलकर कर रहे आज मानव की अष्ट विकृत कृतिया
 अबलाओ अरक्षिताओ की हत्या करना बन गया धम
 पथ चलत अनजान जन का उत्सादन है कतव्य-धम ।
 मन जो दखा यह प्रचंड दानवता का उत्पात धार
 जो दखा कि है कहां न यहा इस क्रूर धम का घोर डार
 ता मग जिल बठन लगा आँखो म प्र धकार छाया
 नरादय जगा उत्साह भरा पड चली शिथिल मरी काया ।
 ऐसा कुछ भान हुआ मानो बरसा का यह अनवरत काम
 बकार हुआ है और मिटा जाता है मानव धम नाम ।
 हिंदू मुस्लिम हा एन और हिंदू मुस्लिम की जय जय हो
 भाई भाई मिल चल और मदिया का सत्र पाप क्षय हो ।
 य सतत प्ररणाण मन का य नित्य तदत्र धम निरलस
 वकार लगे तचन उस क्षण जब जन वर्मा व हुए बरबस
 जब धीर आत्म विश्वास हिला तब आय तुम्हारा स्मरण हुआ
 तब चिता याद आयी, आयी फिर यात् चिता का कृष्ण धुआ ।
 नपट्टे उटटी थी लपक लपक उटटा था धुआ घुमडता-सा
 बरबस राक धामे ध जन नैनो का खोत उमडता सा
 उस ज्वलित चिता की ज्वाला म हमन दखा तब प्रण प्रचण्ड
 उन लपटो म हमन दखा तब पुष्य धम पालन अश्वड

तुम वल् लिय अपना दीपक इस घार अंधर म भी जब
तब क्या हा विचलत औ निराग तवपन् अनुगामी जब हम सब ?

तुमने दखा श्री विभीषिका तुमन यह ताडव दखा था
अपनी आग्ना स ही तुमन नर को पशु वनत देखा था
तुमन हाली जलत दखी, बधन ढील पडते देख ,
तुमने दगा दौरारम्य निरा भाद्र भाई लडते दख ,
उस महानाश की होली म फिर भी निभय तुम कूद पडे ,
मानव का मानवता तन, प्राणा की बाजा लगा अडे ।

तुमन समभा नर को सन्तत श्री नारायण का अग सदा ।
मानव समाज तुमन समभा हिसक पशुओ का वश कदा ?
तुमन कय मानी परा प्रकृति गोणित नयपथ, नख लट्टमती ?
तुमन कय माना कि है प्रकृति हिसानुर मञ्जा रक्त मती ?
य सब दुर्दांत, वृतांत, भ्रांत सिद्धांत न व तुमपर हावी
तुम वाध महा वातदर्शी तुम थे चिर सत्यथ क दावी ।

मानव हिय की बदना यही, मानव का है यह आस महा
करता है पाप पुण्य निशि दिन उसके गाणित म रास महा
क्षण म श्रद्धा क्षण अविश्वास, क्षण उध्वामन, क्षण अथ पतन
क्षण मानवता क्षण दानवता यह है मानव का मानवपन ।
जग उठती न गाणित लिप्ता गद विट विल कर उठती है ।
क्रूरता और निर्यता म उसकी छाती भर उठता है ।

क्षण नर म ही हो जाती है नना का प्रसलता विलुप्त
क्षण नर म ही हा जाती है यह जागरूकता भी सुपुप्त
बालाघा म परिणत होनी स्वासाच्छवासा की स्निग्ध धार
मो-सा जान हैं मद्दिचार उट उठ आत हं हिय विकार
निम्नता वृत्ति यह मानव का तुमन समधान चिरस्वाया
समभा हा महा कभी तुमन दम मानव को गाणित पायी ।

उर्मिला'

लक्ष्मण बिछोह स हिय मे
जग गइ साधना तप की,
थासू बे मिम अंतर स
श्रद्धा कर अजलि टपकी

पह अवधि दीप बन आई ।

पीतम स्मृति दीपक बाली ।

हिय लगन जगी लौ जनक

मजुन प्रराग फलाती

एस समय प्रताक्षा मग मे

उर्मिला लिए निज दीपक

बठी है जागन बन क

नित बाट जोहती तपलक ।

आनकाया की आधी

भय अविश्वास के बादन

कम्पित करते रहत है

स्मृति दीप शिखाको प्रतिपन

दृढ श्रद्धाचल स रभित

वह ज्योति अगड जगी है

बुभन की कभी नही वह

नौ ऐसी भनी लगी है

योगिनी सतत जपती है

अपन योगी की माला,

> उर्मिला महाकाव्य से एक अंश

ध्रानू से बुभा रही है
वह अन्तरतर की ज्वाला ।

तुट गई उमिता पल म
दकर अपना जीवन धन
पिय क बिछोह की लपटें
वन आई यन नुतागान
विरहानलमय मरयल म
खिल उठी तपस्या कलियाँ,
हिय घडवन वनी सुमरनी,
सस्मृति दन गई श्रुतियाँ
वनमास अवधि क दिन ठिन ।
मन क वन गए बडे से ।
हा गए प्राण कुछ आकुल
कुछ कुठ जखड जखडे स ।

कुदन निस्पदन व्रण की
विस्तृत सी करण कहानी
बिठुवन त समय पटन प
नि रही उमिता रानी
ध्रानू रयाही वन आए
मगि नाजन नन वन य
वन गए पर गाया क
सकल्प विकल्प धन य
कम्पित लजनी वनी है
उमिता हृदय की घडवन
गम्भीर विछाह ध्या स
धाकुल ह कामल तन मन ।

है यही उमिला—पीडा
 उसकी अपनी ही बीती
 हा गई तब कर उसमें
 चर अचर यथा सब रानी

उसकी वह विन्हू ध्या म
 बिम्बित है जग की करणा
 उस के हृदय स्पन्दन म
 है विद्वत्पता अरुणा

जग की या अलग अलग-सा
 सत्रम ही विद्युत्तनमय है
 लक्षण का विनि गमन ही
 उमिला विद्याग निलय है ।

सस्मरण सत्रम घन छाए
 नयनी स बरस पजे य ।
 मन तभ म निवासो क
 भभानिन्म भगत् य

मानस तित्त म उठनी
 स्मृति भय मात्तिका गहरी
 उउ चली तीस विजला सी
 आहा मिस घन वनि गहरी

अभ्रावत तरणि किरण सी
 चमकी आगा रह रह के
 हूयावाग म तत्प कर
 मित मौन पवीह चहक ।

मुल मस्मृतिमय वह जीवन
 बन गया क्षणिक मुग्न सपना

रह गया उमिता क त्तिग
 बम नउन नाम का जपना
 क्षपना मन्त्रव तुग कर
 मानवता र चरणा म
 उमिता वा ग मन्त्रा
 दुश्च क पन प्रावरणा म
 पिय विग्रह जनित नित दुस्त म
 जीवन बन गना उलहना।
 जीवन वा ध्यय बना है
 यह विषय बरना महना।

क्षपन पातन वा ठवि का
 नयना म विम्ब उनार
 बटी है लक्ष्मण राना
 प्रतिविम्ब हिय म धार
 यह आख-मिचीना-ग्रीडा
 यक्षपनक ननक मुगवन
 बरना-गमिनी बन क
 वरमाता है निज साउन
 उठ उठ कर उहराना ३
 य मयाबनियौ बाना
 बन गई निमिष म महमा
 उज्ज्वलानी नी घधियाली।

न्यु व नस्मरणों क य
 गरबील मया वरन
 जिनन वरन उनन ही
 य प्राण-वपीह तरम

मूसलाधार धाराएँ
 उठ धाड़ मन अम्बर स
 वेदना हूक उठ आई
 जगता क अतरतर स
 आँधी पानी पक्लि धल
 जीवन म मिले घनरे
 दुख सार भूत बन आण
 जीवन क साभ मवेरे

छिन दामिनियाँ छिन गजन,
 छिन धाराएँ छिन बादल
 छिन उपल विपुल छिन फुहियाँ
 छिन उथल पुधल अति चचल
 या ही उमिला सलीनी
 नित बिता रही निज जीवन
 आकुलता से पूरित है
 उनक जीवन क क्षण क्षण
 मन बिबल, प्राण य बंकन
 हिय व्याकुल चित विरहाकुल
 उमिला - वेदना अमिता
 उमड़ी नयना म दुल दुल ।

चल देस, कल्पने उनको
 सध्या क मौत क्षणा म
 धुपन चुपके नत हो जा
 उाक युग श्रीचरणा म,
 बठी हैं दधि सुमिना,
 करक शुचि सध्या यदन

उमड़ी निश्वास हठीली,
 धडका हिय का निस्पन्दन,
 अनबोली - सी बंठी है
 पाद्व म उमिता भोली,
 ज्या निपट धीरता के ढिग
 बठी ग्ररणा अनबोली ।

दिन थककर मुरङ्ग गया है
 सध्या के पल अचल म,
 भ्रम श्राति व्यथा उमड़ी है
 खग-वृदा के कलकल म
 गोधूली की बेला म
 धूमिल-सा हुआ दिगम्बर
 छाया मीदास्य हृदय म
 कँप उठी बदना घर घर
 डर डर कर घर पग धीरे
 नभ म अधियाला आया
 लुट चला उजेला छिन म
 बढ चली तिमिर की छाया

सस्मरण विहगम आए
 हिय नीड निलय म अपन
 कलरव स मानस ग्रम्बर—
 लग गया निमिष म कँपने,
 क्या दरद पराया जान
 यह बाँभ-साँभ भलबेली ?
 गुण-स्मृति बटार नाती है
 नित यह वेदरद अबली,
 मधुमय संजाग की स्मृतियाँ
 हिय की गुप चुप प्रिय बतियाँ

मन्था वारे अचल म
लगती है वइ मुरतियाँ ।

य वइ मधुर घटिकाए
कलनाव भरा लहराती
मन्था व मून क्षण म
घा जाती है मन्माती

अभिन्नाप रूप धन जात
सुख व सस्मरण निराने
दुग्ददाइ हो जाते हैं
य अति दुलार व पाल

बटा है नास-बहू य
सन्था क नारव क्षण म
जीवन की कसक क्हाती
उठठी है उनक मन म ।

करुना की इन छवियाँ व
कल्पन, साध्य दान कर
चुपक तू अरी चली घा
उनकीपद रजगिरपरधर

विर विरह उदना की है
या उलभी हुई कहानी
फिर कभी उमे मुलभाना
मुन अरी कल्पने रानी ।

दशन कर दीक्षित हा जा
तू करण रहस्य अगम म
तब गाना विरह कथानक
कपित स्वर्ग कोमलतम म ।

गीत

मन मन म गायन-स्वन भर दो ।
मरु-वण कण को रस निभर दो ।

प्राण प्रणादन निम्न गमन रत,
जीवन म उत्पीडन शत शत
जड उद्धत चतन क्षत विक्षत
इनको घरज घनामय कर दा
मन मन म गायन-स्वन भर दा ।

स्वद स्वद म विल-न मनुज-तन
छिन्न भिन्न उसका अपनापन,
खिन्न जान कुण्ठित सवदन
मृण्मय तृण को चिमय कर दा
मरु-वण-कण को रस निभर दा ।

सन-लय-धति-गति ताल राग रति
यह जग-जन जावन की सद्गति
हुई विकृत, विभ्रामत अनति घति
दस उदात्त श्रुतम्भर स्वर दा ।
मन-भन म गायन-स्वन भर दा ।

वन असुन्दर मुत्तर समय
क्षिप्त चित्त वन जाए तामय
रज वण तपवर वन हिरण्मय
या इम धर का पद अणर दा ।
मरु-वण-वण म मधुर रस भर दा ।

शुभम्बर, १९४७

—भावकन म

मेरे जन-नायक की वाणी

गहन नील अम्बर में गरजी मेरे नायक की वाणी
अनिल, अनल जल, थल में तरजी मेरे जन-नायक की वाणी ।

जागो जागा, अमृत सुवन तुम जागो, जागा सान वालो
जागो तुम मिहो क छोनी, जागो सब कुछ खाने वालो ।
जागा अण-काल निर्माता, जागो तुम निज भाग्य विधाता
जागा इतिहासा क पाता जागो तत्त्व ज्ञान के दाता
जागा हिंदू सिख मुसलमन जागो मेरे मानव प्राणी
अनिल अनल जल-थल में गरजी यो मम जन-नायक की वाणी ।

हिमगिरिस टकराकर व्यापी इस वाणी की ध्वनि जग भर में
गूजी यह ध्वनि जग मनुजा के हृदय में अंतरतर में
गरजा हिंद महासागर की प्रतिध्वनिमय उत्तान तरंगों
जग के महाणवा में उमड़ी अभिनव वाचि विलास उमंगों
लेकर यह सदा मुहाबत चहुँदिसि वहाँ हवा रस-मानी
गहन नील अम्बर में गरजी मेरे जननायक की वाणी ।

य नव-नव उद्बोधन क स्वर नवनिर्माण प्रेरणाकारी
य आत्मापण के पावन स्वन ये नित नवल स्फूर्ति मचारी
महानाग न यह सदा यह निजत्व प्राप्ति का निभरण ।
यह अस्वीकृति की गभीर ध्वनि यह विप्लव का रड प्रमजन
धब तक तुमन क्या न मनो यह भय भजन वाणी कल्याणी ?
गहन नील नभ में गरजी है मेरे जननायक की वाणी ।

मेरा पूरब, मेरा पश्चिम, मेरा दक्षिण, मेरा उत्तर,
 मेरी गंगा, मेरी यमुना, मेरे सखा, मेरे भूधर,
 आज सभी ये उदघोषित हैं मेरे जन-नायक के स्वन से।
 गूजी है यह मद महा ध्वनि युग-युग के सागर-मथन से।
 यह वाणी है मम मानव के अमर प्राण की अमिट निशानी,
 अनिल अनल-जल-थल म गरजी मेरे जन-नायक की वाणी।

‘काव्य-शुज’ से

२६४४

विप्लव गायन

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिसमें उबल पुबल मच जाए,
 एक हिलोर उधर में आए एक हिलार उधर से आए
 प्राणों के ताल पट जाएं
 प्राहि नाहि रख नभ में छाए
 नाश और सत्यानाश का—
 धुआधार जग में छा जाए

बरस आग जलद जन जाए
 भस्मसात भूधर ही जाए
 पाप पुण्य सदसत् भावा की
 धून उठ उठे लये बाप

नभ का वस्थान पट जाए—
 तार टूक-टूक हो जाएं
 कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
 जिसमें उबल पुरन मच जाए ।

माता की छाती का अमृत
 मय पय बाल-बूट हा जाए
 आला का पानी मूख
 के गोणित की घूट हा जाए

एक और कायरता काप
 महानुगति विगलित हो जाए
 अंधे भूढ़ विचारा की वह
 अचल गिला विचलित हो जाए

और दूसरी ओर कपा दन
 वाला मजन उठ गए

अन्तरिक्ष म एक उमी नागक
तजन का च्वनि मडराण

कवि कुछ एमी तान मुनाघ्रा
जिसत उयल-पुथल मच जाए

नियम और उपनियमा क य
बधन टूक-टूक हो जाए
निश्वम्भर की पापक बीणा
क मर तार मूक हा जाएँ,

गान्ति-दड टूट उस महा-
रद्र का मिहासन धराए
उमकी 'वासाच्छवास-दाहिका
विश्व क प्रागण म पहराए

नाग! नाग! 'हा महानाग' 'की
प्रत्यकरी अखि लुल जाए
कवि कुछ ऐसी तान मुनाघ्रा
जिसस उयल-पुथल मच जाए।

मावधान ' मरी बीणा म
चिनारिया धान बँटी है
टूटी है मिजरावे अगुलियाँ
दाना मरी ऐंठी ह।

कठ खा है महानाग का
मारन गीत रड होता है
भाग लगगी धण म, हत्तल
म अर धु-र मुड हाता है

भाड और भवाड दग्ध हैं—
इस जलत गायन क स्वर स
रड-गीत की कुछ तान है
निक्ली मर अन्तरतर स।

कण कण भ है याप्त वहां स्वर
 राम राम गाता है वह ध्वनि
 यही तान गाती रहती है
 बालकूट फणि की चितामणि

जीवन-ज्याति लुप्त है—ग्रहा !
 मुप्त है मरक्षण की घडिया,
 लटक रही है प्रतिपल में इस
 नाशक सभक्षण की लडिया ।

चकनाचूर करो जग को गूज
 ब्रह्माण्ड नाग के स्वर से,
 रद्व गीत की फुड तान है
 निकला भर अतरतर स ।

दिन को मसल-ममन में महवी
 रचता आया है यह दखो
 एक एक अमुलि परिचालन
 म नागक ताडव को पखो ।

विश्वमूर्ति ! हट जाओ ! ! भरा
 भीम प्रहार सहे न सहगा
 टुकडे टुकडे हो जाओगी
 नाशमात्र अवशेष रहेगा

आज दख आया है—जीवन
 के सब राज सभक आया है
 भू विलास म महानाश के
 पोषक सूत्र परख आया है

जीवन गीत भुला दो—कठ
 मिला दो मृत्यु गीत क स्वर स
 रद्व गीत की फुड तान है
 निकली मेरे अतरतर स ।

असिधारा-पथ

आ असिधारा पथ क गामा ।

विकट मुभट तुम अथक पथिक तुम कष्टक-काणित मग अनुगामा
आ असिधारा-पथ क गामी ।

तुम विकरान मृत्यु घासन क साधक तुम नव जावन दाना
तुम विध्वज क परम प्रवजक चरम गान्ति क निष्ठुर स्वामा ।
आ असिधारा-पथ क गामी ।

शत - शत गतादिया क पातक पुज हा रह पानी-पानी
अजनि नर नर जावन शणित दन बाल आ निष्कामा ।
तुम असिधारा-पथ क गामा ।

ह प्रचण्ड उदण्ड अलण्ड महाव्रत क पालक विजानी
वडप उठा है सब जग जरा टहर जाया ह मौन घनामी ।
तुम असिधारा-पथ क गामी ।

मेह की झडी लगी

मेह की झडी लगी नह की घडी लगी।

हहर उटा विजन पवन

सुन अथुत आमत्रण

डोना वह यो उमन

ज्या अधीर स्नेही मन

पावस क गीत जग गीत की रनी जगी।

तड-तड तड तडित धमक—

निगि दिगि भर रही दमक

घन गजन भूज गमक—

जल वारा भूम भमक

भर रही विपाण हिय चकित कल्पना पगी।

अस्त मस्त नीराम्बर

आन वानर चादर

अध्य न रहा सादर—

जल गागर पर गागर

नक्ति नीर सिक्त नूभि म्नेह सजना पगी

अम्बर म भूतल तक

तुमका खोजा अपनक

क्या न मिल अउ तक ?

ओ मरे अनन भनक।

बुद्धि मदिन प्राण चकित व्यजना ठगी ठगी

मेह की झडी लगी नह की घडी लगी।

परिशिष्ट-१

'नवीन' जी के जीवन से सम्बन्धित कुछ प्रमुख घटनाएँ

- १८६७ (८ दिसम्बर) जन्म मध्यभारत के गाजापुर परगना के भयाना गाव में
- १९०८ शिक्षा प्रारम्भ
- १९१३ गाजापुर के अग्रज मिडिल स्कूल में अभिनीत चन्द्रगुप्त नाटक में चन्द्रगुप्त का अभिनय मित्रों की प्रशंसा प्राप्त करके आगे पढ़ने के लिए उच्चन गए।
- १९१६ मई में विवाह। लखनऊ काग्रम अधिवेशन में गणेश शंकर विद्यार्थी माधनलाल चतुर्वेदी से श्रीरमथिलीकरण गुप्त से भेंट।
- १९१७ परनी की मृत्यु। मद्रिक् पाम करके राजकी शिक्षा के लिए बनपुर गए। पहली रचिता जीव इश्वर वार्तालाप की रचना। प्रताप से सह-सम्पादन।
- १९१८ मरस्वता में सखूँ बहाना प्रकाशित। पहली बार नवीन उपनाम का उपयोग।
- १९२० प्रताप मासिक दैनिक पत्रिका। जोगीनी लेख माला।
- १९२१ मत्याग्रह आन्दोलन में सम्मिलित, बालेज छोड़कर प्रथम जन यात्रा। बाराणसी जनारम।
- १९२२ बाराणसी लखनऊ।

- १९२३ प्रभा क सम्पादक । कारावास कापुनर । पिता का देहान्त ।
- १९२५ काग्रस क कानपुर अधिवेशन क प्रब धकर्ताग्रा म ।
- १९३० दो बार जन-यात्रा कानपुर गाजीपुर ।
- १९३१ कानपुर क हिंदू मुसलिम दंग म विद्यार्थीजी की मृत्यु । प्राणापण' काय की रचना । प्रताप' के सम्पादक । मध्य भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति ।
- १९३१ ३४ वारावास फजावात धलीगढ बरेली ।
- १९३६ कानपुर नगर काग्रस समिति क अध्यक्ष ।
- १९३८ उत्तरप्रदेश काग्रस कमेटी क प्रधान मंत्री ।
- १९३९ गणेश गकरजी की कथा क कपडा म आग लगन पर प्राण की बाजी लगाकर उम बचाया । प्रथम कविता संग्रह कुकुम का प्रकाशन ।
- १९४२ ४५ वारावास क द्तीय कारागार बरेली ।
- १९४६ कतीय असम्बली क सन्स्य ।
- १९४७ माता का स्हात ।
- १९४९ जुलाई की ७ तारीख का दूसरा विवाह कुमारी सरला से ।
- १९५० ब्रज साहित्य मण्डल क सहारनपुर अधिवेशन की अध्यक्षता ।
- १९५१ मध्य भारत पत्रकार परिषद क अध्यक्ष । रश्मिरेखा (कथा का जन्म) । रश्मि रेखा का प्रकाशन । हृदय रोग का पहला आक्रमण ।
- १९५३ कानपुर स लोकसभा क सदस्य निर्वाचित । अपलक और कवासि' का प्रकाशन । मध्यभारत हिंदी साहित्य सम्मेलन क सभापति ।
- १९५३ विनोबा-स्तवन का प्रकाशन ।
- १९५४ उत्तरप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता ।
- १९५५ कन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित राजभाषा आयोग क सदस्य । उमिला महाकाव्य का प्रकाशन । पक्षाघात । ११ सितम्बर को बम्बई आत समय अन्तिम कविता लिखी ।

- १९५६ ममदीय और प्रशासनिक गंगा क निमाण क लिए गठित समिति क सदस्य ।
- १९५७ ससदाय हिन्दी परिषद क उपाध्यक्ष । उमिला का प्रकाशन ।
- १९५८ पञ्जात का दूसरा आक्रमण । पदमनूषण' की उपाधि न विभूषित । साहित्यसारा द्वारा दिल्ली में अभिनन्दन समारोह ।
- १९६० राधामा क सदस्य निर्वाचित । २६ अग्रज का पदमनूषण' उपाधि का प्रमाण-पत्र और स्वण-पदक प्राप्त । २६ अग्रज का निधन ।
- १९६२ प्राणापण का प्रकाशन
- १९६४ हम विपत्तायी जनम क का प्रकाशन ।

परिशिष्ट-२

'नवीन' जी की रचनाएँ

रचना	प्रथम संस्करण
१ कुकुम	१९३९ ई०
२ राधम ग्वा	१९५१ ,
३ अग्रज	१९५२ '
४ क्वामि	१९५२
५ विनोया स्तवन	१९५३
६ उमिला (काव्य)	१९५५
७ प्राणापण	१९६२ ,,
८ हम विपत्तायी जनम क	१९६४ '

- १९५६ मसदीय और प्रशासनिक शब्दों के निर्माण के लिए गठित समिति के सदस्य ।
- १९५७ मसदीय हिन्दी परिषद के उपाध्यक्ष । 'उर्मिला' का प्रकाशन ।
- १९५८ पक्षाघात का दूसरा आक्रमण । 'पद्मभूषण' की उपाधि में विभूषित । साहित्यकारों द्वारा दिल्ली में अभिनन्दन ममारोह ।
- १९६० राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित । २६ अप्रैल का पद्मभूषण' उपाधि का प्रमाणपत्र और स्वर्ण-पदक प्राप्त । २९ अप्रैल को निधन ।
- १९६२ प्राणापण का प्रकाशन
- १९६४ हम विषपायी जनम के का प्रकाशन ।

परिशिष्ट-२

'नवीन' जो की रचनाएँ

रचना	प्रथम संस्करण
१ कुकुम	१९३९ ई०
२ राशम ग्वा	१९५१ ,
३ प्रपलक	१९५२ '
४ बवानि	१९५२ '
५ बिनोवा स्तवन	१९५३ '
६ उर्मिला (पाध्य)	१९५५
७ प्राणापण	१९६२ ,
८ हम विषपायी जनम के	१९६४ '